कुचलने वाले को खुशबू ही देना फूल से सीखो
ये वीराने चमन बन जाएँ खिलना इस तरह सीखो॥

छाँह पर बैठते पर रूख बरसाते हैं फूलों को,
चलाते चोट पत्थर की उन्हें फल बाँटना सीखो।

हमेशा से यही दस्तूर है दिलबर के प्यारों का,
उठे जो हाथ कातिल का उसे तुम चूमना सीखो।

जला करती है दुनिया फूट नफरत जुल्म से हरदम,
बिखेरो चाँदनी ठंडी दिलों में चाँद से सीखो।

दिले मोती सभी के टूट कर फैले बिखरते हैं,
इन्हें ले प्यार के धागे से माला गूँथना सीखो।

-पूज्य श्री बाबा महाराज जी कृत

संरक्षक –

श्री राधा मान बिहारी लाल

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान अनेकानेक सत्कार्यों का संचालन प्रभु की प्रियता व लोक कल्याण की भावना से नि:शुल्क कर रहा है, उसी तरह 'मान मंदिर' पत्रिका का भी कोई शुल्क नहीं रखा गया है।

श्रद्धानुसार भावार्पित तुलसीदल भी ग्राह्य है अर्थात् स्वेच्छानुदान स्वीकृत है।

प्रकाशक –

श्रीराधाकान्त शास्त्री

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ. प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558, 9927194000

संपादकीय

भाव–सम्प्रेषण सर्वत्र सौहाद्र्य का हेतु है। भावों का सम्प्रेषण कई प्रकार से होता है, यथा – दर्शन से, ध्यान से अथवा संस्पर्श से। मछली देखने मात्र से और कछुआ ध्यान से एवं पक्षी स्पर्श से अपने बच्चों का पोषण कर देते हैं।

दर्शनध्यान संस्पर्शैः मत्स्यकूर्म विहङ्गमा।

स्वान्यपत्यानि पुष्णन्ति तथाहमपि पद्मज॥ (पद्मपुराण)

समाज में भावों का सम्प्रेषण मैत्री, करुणा, मुदिता, सौहाद्र्य, औदार्यादि अनेक गुणों का आधान कर सकता है।

भाव–सम्प्रेषण का कार्य श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान की पत्रिका मानमंदिर (मानगढ़) कर रही है, जिसमें मुख्य भूमिका निभाती हैं यहाँ की बालसाध्वियाँ। आशा है पाठकगण इसके पठन–पाठन से लोक–कल्याण में सहायक होंगे।

–श्रीराधाकान्तजी शास्त्री, श्रीमानमन्दिर व्यवस्थापक।

अनुक्रमणिका

१.	ब्रजरजनिष्ठ संत 'श्रीप्रियाशरणजी महाराज'	४
२.	अनन्य गुरुभक्त सहजोबाई	७
३.	भगवत्प्रेमी ही सद्गुरु	८
४.	मानमंदिर की गतिविधियाँ	११
५.	मानमंदिर के विश्वकर्मा – संत श्रीराजकुमारजी महाराज	१५
६.	करुणामयी की करुणा (ब्रजबालिका साध्वी सुश्री मुरलिका जी शर्मा, मान मंदिर)	१९
७.	विश्व की सुख शान्ति एवं समृद्धि का स्रोत – "ब्रज संस्कृति का संरक्षण" (अन्तर्राष्ट्रीय कथा व्यास – डॉ. श्री रामजीलाल शास्त्री)	२१
८.	भक्त प्रवर प्रह्लादजी महाराज का उपदेश (व्यासाचार्य पं.श्रीमहेशचन्द्रजी शास्त्री)	२३
९.	जब ध्रुव वन को चले	२४
१०.	गोपियों की गौ–प्रेम निष्ठा (संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी दिव्याजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)	२७
११.	श्रीजी की कान्ति–किरणें ब्रजांगनाएँ (संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी ब्रजबालाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)	२८
१२.	ब्रज–निष्ठा से भाव–संसिद्धि (संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी गोपालीजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)	२९
१३.	निष्काम नामाराधना (संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी लाड़लीजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)	३०
१४.	अखण्ड आत्माराम की आराध्या 'अनुरागिनीश्री' (संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी मुकुन्दप्रियाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)	३१
१५.	DHAM NISHTHA	३२

श्रीमानमन्दिर की बेवसाइट www. maanmandir. Org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८.३० से ९.३० तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६.३० से ७.३० तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं। इस पत्रिका में दिए गए श्रीबाबामहाराज के सत्संग पर आधारित लेखों को यू. टूब. (You Tube) के द्वारा उपलब्ध सत्संग के माध्यम से लाभ उठाया जा सकता है।

ब्रजरजनिष्ठ संत 'श्रीप्रियाशरणजी महाराज'

श्रीप्रियाशरणजी महाराज किशोरावास्था में ही ब्रजभूमि में आ गए थे और गौड़ीय वैष्णवों के शिरोमणि सिद्ध संत पंडित बाबा रामकृष्णदास जी महाराज की सन्निधि में रहकर गोवर्धन में ही भजन किया करते थे। पंडित बाबा ने उन्हें ब्रजवासियों के यहाँ से मधुकरी (भिक्षान्न) माँगने का निर्देश दिया था। वह जब ब्रजवासियों के घर जाते तो प्राय: ब्रजवासी बालक भोजन करते समय अपनी उच्छिष्ट रोटी इन्हें दे दिया करते थे, कट्टर ब्राह्मण परिवार के संस्कार होने के कारण उन्हें यह अच्छा नहीं लगता था। एकबार इन्होंने करुण क्रंदन करते हुए पंडित बाबा से कहा कि आप मुझे मधुकरी माँगने के लिए ब्रजवासियों के घर भेज देते हैं किन्तु वे मुझे अपनी जूठन दे देते हैं और इस प्रकार मेरा धर्मभ्रष्ट हो जाता है, अब आप ही बताएँ कि मैं क्या करूँ? पंडित बाबा बोले - "तू चिंता मत कर, कल से मैं भी तेरे साथ मधुकरी में चलूँगा।" अगले दिन प्रियाशरणजी पण्डित बाबा के साथ मधुकरी के लिए मुखराई (श्रीराधारानी की ननिहाल) में गए। जब एक ब्रजवासी के घर पहुँचे तो वहाँ पर पाँच-छ: वर्ष के दो बालक भोजन कर रहे थे। पंडित बाबा ने प्रियाशरण महाराज से कहा - "इन बालकों को ध्यान से देखो, कौन हैं ये?" महाराजजी ने ध्यानपूर्वक अवलोकन किया तो ऐसा प्रतीत हुआ कि कृष्ण और बलराम ही बालक रूप में उस घर में भोजन कर रहें हैं। वह पण्डित बाबा से बोले - "बाबा! ये तो कृष्ण और बलराम हैं।" पण्डित बाबा ने कहा - "अब तेरी समझ में आया!! इस ब्रज में आज भी राम-श्याम बाललीलायें करते हैं, ब्रजवासियों का भोजन उन्हीं की सीथ प्रसादी है। अगर तू अपने इष्टदेव का जूठन प्रसाद ग्रहण करने में घृणा करेगा तो यहाँ किसलिए आया है?" पण्डित बाबा के इस दिव्य उद्बोधन से प्रियाशरण महाराज का ब्रजवासियों की मधुकरी के प्रति अभाव समाप्त होकर सुदृढ़ भाव हो गया। श्रीमहाराजजी ने अपनी साधनावस्था में पंडित बाबा के सान्निध्य में रहकर समस्त गौड़ीय साहित्य का अध्ययन किया, उन्हें सभी वैष्णव-सम्प्रदाय (हरिदासी, राधावल्लभ, निम्बार्क, वल्लभ, श्रीसम्प्रदाय आदि) के साहित्य का ज्ञान था, श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी के बाद आधुनिक कलिकाल में 'महावाणी' ग्रन्थ तो आपश्री के द्वारा ही प्रकट हुआ है। आपने अध्ययनकाल में गौड़ीय-ग्रन्थों में जब पढ़ा कि **'वृन्दावनाभिधे नवद्वीपे धामे'** वृन्दावन धाम और नवद्वीपधाम एक ही हैं, क्योंकि वहाँ श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी का प्राकट्य हुआ है, भक्तगण भी इसी भाव से वहाँ रहते हैं। तो आपके मन में विचार आया कि एकबार मैं भी महाप्रभु की जन्मभूमि नवद्वीपधाम का दर्शन कर लूँ। आप पंडित बाबा के पास गये और उनसे अपना मनोरथ व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि तुम्हारी इच्छा है तो दर्शन कर आओ। पंडित बाबा ने कभी नवद्वीप का दर्शन नहीं किया था, उनकी तो यही अवधारणा थी कि सभी साधनों का साध्य तो 'ब्रजभूमि' ही है, सबका साध्य ब्रज मिल गया तो अन्य तीर्थों व

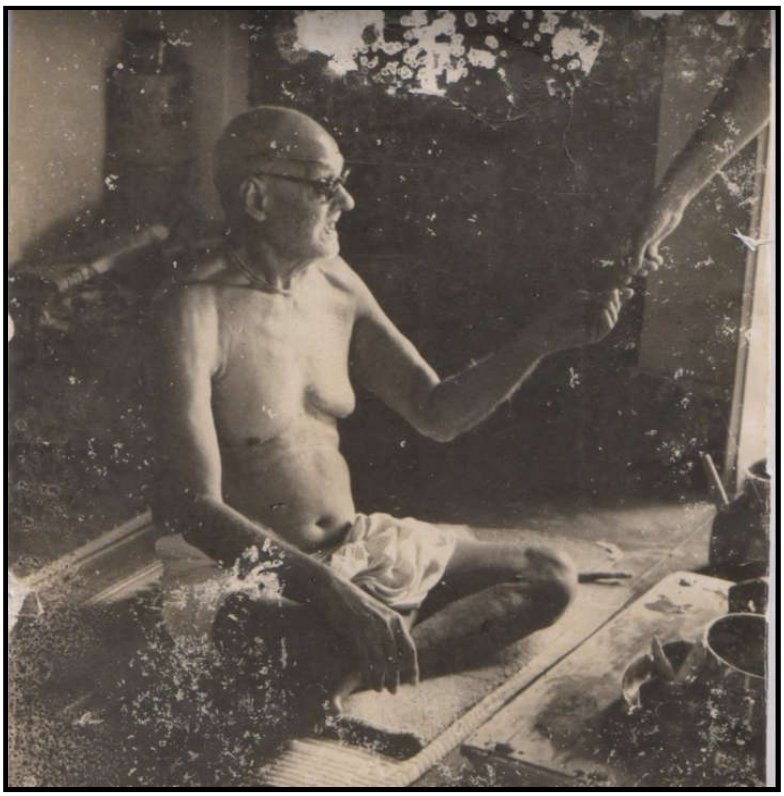

धामों में जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। पंडित बाबा से आज्ञा लेकर प्रियाशरण बाबा ने जब ब्रज के बाहर जाने के लिए अपने सामान की पोटली बाँधकर रात्रि में शयन किया तो स्वप्न में उन्हें एक रमणी दिखाई पड़ी और उनकी पोटली को मुस्कुराते हुए उसने कुञ्ज के एक कोने में रख दिया और चली गयी। श्रीगुरुदेवमहाराज प्रात:काल जगे तो घबड़ाये कि ये कैसा स्वप्न है, तुरंत वे पंडित बाबा के पास पहुँचे और उनसे अपने स्वप्न का वृत्तान्त बताया, पंडित बाबा बोले कि वह रमणी कोई और नहीं, श्रीजी की सहचरी थी, वो तुमसे कह गयी है कि मैं तेरी पोटली निकुञ्ज में रख रही हूँ, अब तू यहीं ब्रज में रह। यहाँ से अन्यत्र कहीं मत जा। यह सुनकर श्रीप्रियाशरण बाबा फिर कभी भी ब्रज के बाहर नहीं गये, निष्ठापूर्वक आजीवन धामवास व लताओं-कुंजों का नित्य दर्शन करते हुए ब्रजोपासना की। श्रीगुरुदेवमहाराज का धाम के प्रति ऐसा अगाध स्नेह था कि जीवनपर्यन्त ब्रजप्रेमीजनों को कथा-वार्ता (लीलागुणगान) के द्वारा ब्रजप्रेमनिष्ठा की शिक्षा देते रहे। पूज्य श्रीरमेशबाबामहाराज जब साठ वर्ष पूर्व ब्रज में आये तो उनके समक्ष यह प्रश्न उठा कि गुरु रूप में किस संत को वरण किया जाय, अभीष्ट गुरु की खोज में पूज्यश्री ब्रज के सभी स्थलों पर अनेकों संतों के पास गए परन्तु उनके हृदय की उत्कंठा का समाधान हुआ संत शिरोमणि अनन्य ब्रजनिष्ठ बाबाश्री प्रियाशरणजी महाराज की सन्निधि में आने पर। यद्यपि महाराजश्री किसी को शिष्य नहीं बनाते थे और उन्होंने श्रद्धेय श्रीबाबामहाराज से भी कहा था कि तुम अपने हृदयगत भावानुसार किसी को भी गुरु बनाने के लिए स्वतंत्र हो परन्तु श्रीबाबामहाराज ने भी उनसे नि:संकोच कह दिया था कि आपके अतिरिक्त मेरा हृदय किसी अन्य को गुरु रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उनकी पूज्यश्रीमहाराजजी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा को देखकर उन्होंने भी स्वीकृति प्रदान कर दी थी कि यदि तुम्हारी ऐसी ही अभिलाषा है तो तुम मुझे गुरु रूप में वरण कर सकते हो। पूज्य श्रीगुरुमहाराज ने एकबार श्रीबाबामहाराज से कहा था कि तुम ब्रज-वृन्दावन वास करने को आये तो हो लेकिन सावधान रहना, वृन्दावन में वैष्णवी माया का साम्राज्य है अर्थात् यहाँ साम्प्रदायिक-संकीर्णता (साम्प्रदायिक राग-द्वेष) का तांडव नृत्य हो रहा है। तुम कभी भी इस साम्प्रदायिक दुराग्रह के वितण्डावाद में मत पड़ना, सभी सम्प्रदायों का सम्मान करना, सभी को साथ लेकर चलना। पूज्य श्रीगुरुदेव की आज्ञा का श्रीबाबामहाराज ने अक्षरश: पालन किया, ये स्वयं तो साम्प्रदायिक-संकीर्णता से कोसों दूर हैं ही, अपितु इनका स्वप्न है कि हिन्दू-समाज, साधु-वैष्णव-समाज वर्तमानकाल में जिस साम्प्रदायिक-द्वेष से ग्रस्त होकर तेजहीन हो अनुक्षण क्षरण को प्राप्त हो रहा है, वह इससे मुक्त हो। सभी वैष्णव-सम्प्रदायों में पारस्परिक प्रेम हो, सब एक-दूसरे का सम्मान करें। श्रीमानमंदिर में आज भी समस्त सम्प्रदायों के साधु-वैष्णव भेदबुद्धि से रहित होकर परस्पर सौहार्द के वातावरण में निवास करते हैं। यहाँ से संचालित 'श्रीराधारानी वार्षिक ब्रजयात्रा' में भी अखण्ड नाम-संकीर्तन को लेकर साम्प्रदायिक भेद-भाव नहीं होता। चाहे हरेकृष्ण महामंत्र का कीर्तन हो अथवा युगल महामंत्र का कीर्तन हो, सभी सम्प्रदाय के वैष्णव अपनी रुचि और श्रद्धानुसार कोई भी कीर्तन करने के लिए स्वतंत्र हैं।

श्रीगुरुदेव द्वारा धामनिष्ठा के उपदेश से श्रीबाबामहाराज ने भी ब्रज में अखण्ड वास करने का सुदृढ़ संकल्प लिया। इसलिए तद्भावभावित (धामनिष्ठ) महापुरुष के संग से ही हृदय में धाम के प्रति अनन्य भावनिष्ठा आती है, इस भाव की प्राप्ति सुदुर्लभ है, पूज्य प्रियाशरणमहाराजजी की कथा बहुत से लोग श्रवण करते थे लेकिन सबको धामनिष्ठा की प्राप्ति नहीं हो सकी, जिस पर श्रीजी की कृपा होती है, उसी के मन में अधिभूत धाम के प्रति निष्ठा व भावोत्पन्न होता है। पूज्य महाराजश्री को समस्त शास्त्रों का, विभिन्न सम्प्रदायों के वैष्णव ग्रंथों तथा ब्रज के रसिक महापुरुषों की वाणियों का ऐसा विशद ज्ञान था कि वह बाबा महाराज से कहा करते थे कि जब मैं प्रवचन करता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त शास्त्र मेरे सम्मुख खड़े होकर मुझसे कह रहे हैं - मुझे बोलो, मुझे बोलो।

वृन्दावन का एक प्रसिद्ध सेठ प्रियाशरणमहाराजजी के लोकोत्तर व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनकी सेवा में संलग्न हो गया। महाराजश्री ने उसकी सेवा केवल इसीलिए ग्रहण की क्योंकि वह उसके माध्यम से ब्रज की सेवा करना चाहते थे। सर्वप्रथम पूज्य महाराज जी की ही प्रेरणा से उस सेठ के द्वारा बरसाना के श्रीजी मंदिर का विस्तार किया

गया तथा श्रीजी की सेवा की सुचारु व्यवस्था भी की गयी। उसी प्रकार वृन्दावन में बांकेबिहारीजी की सेवा-व्यवस्था भी महाराजजी के निर्देशानुसार इस सेठ द्वारा की गयी। गोवर्धन में मानसी गंगा का जीर्णोद्धार भी उन्हीं की अनुकम्पा से हुआ। इसके अतिरिक्त समस्त ब्रजमंडल के साधु-संतों की सेवा-व्यवस्था भी महाराजजी ने सेठजी के द्वारा करवाई जो आज तक जारी है। इन महान सेवा-कार्यों का संचालन करने के बावजूद भी वे यश और प्रतिष्ठा से बहुत दूर रहे। महाराजश्री का ब्रज की लताओं-वृक्षों के प्रति दिव्य भाव था। जब वह गोवर्धन से बरसाना आते तो अधिकतर प्रेमसरोवर पर ही निवास करते थे। वहाँ रहते समय भी वह भजन कमरे में नहीं करते थे वरन् लताओं के नीचे बैठकर ही माला पर जप किया करते थे। प्रेमसरोवर से वह प्रतिदिन पैदल चलकर गह्वरवन आया करते थे और यहाँ की सघन लताओं को निहारा करते और उनकी छाया में बैठकर भजन किया करते थे। एकबार वह प्रेम सरोवर से गह्वरवन आये और भजन करने के लिए नीचे बैठे तो उस समय भूमि पर बन्दर का मल पड़ा था, यह देखकर एक संत झाड़ू लेकर उसे साफ करने चले तब तक पूज्य महाराजजी ने अपने हाथ से ही उस मल को हटा दिया और बोले - 'ब्रज का वानर हम लोगों से श्रेष्ठ है अत: उसका मल भी हमारे मल से अच्छा है।' महाराज श्रीप्रियाशरणजी प्राय: कहा करते थे कि लोग ब्रज में भजन करने के लिए आते हैं, प्रारम्भ में तो वे ब्रजवासियों में बड़ी श्रद्धा रखते हैं और मधुकरी माँगते समय ब्रजगोपियों को बड़े आदर से 'ब्रजमाई' कहकर संबोधित करते हैं लेकिन साल भर बाद भजन करके सिद्ध बन जाते हैं और मदोन्मक्त होकर ब्रजवासियों में अभाव करने लगते हैं और उनके लिए तिरस्कार सूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं कि ये साली रोटी नहीं देती, ये साला ब्रजवासी दूध नहीं देता। महाराजश्री का कहना था कि ब्रज तो वह स्थल है जहाँ आकर भगवान् भी अपनी भगवत्ता को पूर्णरूपेण तिलांजलि दे देते हैं और एक साधारण से बालक बनकर घर-घर गोरस की चोरी करते हैं, ब्रजबालाओं की चुल्लू भर छाछ पाने के लिए नाचा करते हैं। इसलिए ब्रज में आकर कभी बड़ा नहीं बनना चाहिए, यहाँ तो अत्यंत दैन्य भाव के साथ रहना चाहिए। यहाँ रहकर जो सिद्ध बनता है, बड़ा बनने की कोशिश करता है तो ठाकुर जी उसका मद नष्ट कर देते हैं। जिस प्रकार बन्दर एक छोटे-से सर्प को हाथ से पकड़ लेता है और उसके मुख को पत्थर पर घिसता है तथा फिर उसे अपने सन्मुख लाकर देखता है कि यह जीवित है अथवा नहीं। जीवित होने पर सर्प क्रोधित होकर फुफकारता है तो बन्दर पुन: उसके मुख को पत्थर पर रगड़ता है और अपने मुख के पास लाकर फू-फू करता है। सर्प जीवित रहता है तो अपना क्रोध नहीं छोड़ता और फुफकारता रहता है तो बन्दर भी पत्थर पर उसके फन को रगड़-रगड़ कर मार डालता है, इसी प्रकार ब्रज में जो साधु मदोन्मक्त हो जाते हैं तो श्रीठाकुरजी उनके मद को समूल नष्ट करने के लिए दण्डित करते हैं।

पूज्य प्रियाशरणमहाराजजी ने जीवन में कभी भी धन का स्पर्श नहीं किया। उन्होंने एकबार श्रद्धेय श्रीरमेशबाबाजी महाराज से कहा था कि जब मेरी मृत्यु होगी तो मेरे पास से चार आना भी नहीं निकलेगा। गुरुदेव की इस परम निष्किंचन-वृत्ति से शिक्षा लेकर श्रीबाबामहाराज ने आज तक कभी धन का संग्रह नहीं किया। इसके अतिरिक्त श्रीप्रियाशरणजी महाराज का प्रियाजी की क्रीडाभूमि बरसाना से भी अगाध प्रेम था। अपने नित्यधाम-गमन से पूर्व एकबार उन्होंने पूज्य श्रीबाबामहाराज से कहा कि तुम बरसाने की विभिन्न लीला-स्थलियों की रज मेरे लिए ले आना। श्रीगुरुदेवमहाराज की आज्ञानुसार बाबाश्री ने बरसाना धाम की विभिन्न लीला-स्थलियों की रज एकत्रित करके गोवर्धन में ले जाकर गुरुदेव को समर्पित कर दी। गुरुदेव महाराज बरसाने की रज प्राप्तकर श्रीबाबामहाराज पर बहुत प्रसन्न हुए और ब्रज-रज की पुड़िया को लेकर चुपचाप अपने पास रख लिया, इसके कुछ दिन बाद ही उनका गोलोकगमन हुआ।

श्रीमहाराजजी की ब्रजवासियों में ऐसी अगाध निष्ठा थी कि वह साधु-संतों से अधिक श्रेष्ठ ब्रजवासियों को मानते थे। उन्होंने कहा भी था कि मेरी मृत्यु होने पर साधु-संत नहीं अपितु ब्रजवासी ही मेरे मृतक देह का अंतिम संस्कार करें। महाराजजी के अन्तिम समय में एक चमत्कार हुआ। आपने प्राण-प्रयाण के लगभग १५-२० मिनट पहले कीर्तन करवाया और श्रीजी का परममंगल नाम-श्रवण करते हुए नित्यलीला में प्रवेश कर गये। उनकी इच्छानुसार बरसाने के ब्रजवासियों द्वारा ही उनका अंतिम संस्कार किया गया।

अनन्य गुरुभक्त सहजोबाई

सहजोबाई का अत्यंत विचित्र चरित्र यह दर्शाता है कि गुरु-शिष्य का भाव सच्चा होता है और जन्म-जन्मान्तरों तक स्थाई बना रहता है। पूर्व जन्म में संत चरणदास जी सहजोबाई के गुरुदेव थे। जन्मजात भक्त होने के कारण सहजोबाई विवाह करना नहीं चाहती थीं लेकिन सामाजिक बंधन में जकड़े उनके माता-पिता ने उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह कर दिया। विवाहोपरान्त सहजो जी दुल्हन के वेश में विदा होने के लिए खड़ीं थीं। उसी समय संत चरणदास जी उनके घर के पास से होकर निकले, उन्होंने सहजोबाई को देखा तो उनके पूर्व जन्म के स्वरूप को पहचान गए और उन्हें पुकारकर बोले - "अरे सहजो ! तू यह क्या कर रही है ?" जैसे - किसी सोये हुए व्यक्ति को जगाया जाय तो वह तुरंत ही जाग पड़ता है, उसी प्रकार संत चरणदासजी की आवाज सुनकर सहजोबाई को भी पूर्व जन्म की स्मृति हो आई और वह विवाह-मण्डप से भागकर गुरुदेव के शरणापन्न हुयीं और आजीवन भक्तिमय जीवन अपनाया। सहजोबाई अनन्य गुरुनिष्ठ भक्त हुयीं हैं। गुरुनिष्ठा सम्बंधित उनका एक प्रसिद्ध पद है -

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ। गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं॥
हरि ने पाँच चोर दिए साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटुम्ब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी॥
हरि ने रोग-भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतम रूप लखायौ॥
हरि ने मो सूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ॥

सहजोबाई कहती हैं कि मैं राम (भगवान्) का त्याग कर दूँगी परन्तु गुरु का त्याग कभी नहीं कर सकती। मैं भगवान् को गुरु के समान महत्वपूर्ण नहीं मानती हूँ क्योंकि भगवान् ने तो जीव को इस मायामय जगत में जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा दिया जबकि गुरु महाराज जीव को आवागमन के इस कठोर पाश से मुक्त करते हैं। भगवान् ने तो अनादिकाल से जीव के साथ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि पाँच शत्रु लगा दिए हैं परन्तु सद्गुरुदेव ही अनाथ जानकर जीव को इन विकारों से बचाते हैं। भगवान् ने जीव को पारिवारिक आसक्ति के जाल में फँसा दिया किन्तु गुरुदेव ने जीव की ममता-मोह की इस दुर्जर श्रंखला का उन्मूलन किया। भगवान् ने जीव को रोग रूपी मायामय भोगों में जकड़ दिया लेकिन गुरुदेव ने वैराग्य उत्पन्न कर भोगासक्ति से जीव की रक्षा की। भगवान् तो अनादिकाल से जीव को संसार के कर्म-बन्धनों में बाँधकर संसृति-चक्र में ही घुमाते रहे परन्तु करुणामय गुरुदेव ने आत्मसाक्षात्कार कराकर जीव को इस चक्र से सदा के लिए मुक्त कर दिया। सहजोबाई कहती हैं कि भगवान् ने तो सदा से अज्ञानान्धकार में डालकर अपने स्वरूप को मुझसे छिपाए रखा किन्तु गुरुदेव ने भक्ति और ज्ञान का दीपक प्रज्वलित कर मुझे भगवान् के स्वरूप का दर्शन करा दिया।

भगवत्प्रेमी ही सद्गुरु

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (२१/०७/२०१३) से संग्रहीत

आध्यात्मिक जगत में 'गुरु तत्व' को लेकर एक विचित्र स्थिति है। कहीं-कहीं तो गुरु करना अत्यंत अनिवार्य बताया गया है जबकि भक्ति-शास्त्रों में भगवान् को भी गुरु रूप में वरण करने की सम्मति दी गयी है। 'गुरु तत्व' के बारे में बहुत-सी शंकायें लोगों को घेरे रहती हैं जिनका समुचित समाधान नहीं हो पाता है।

गुरु-सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

इस सम्बन्ध में कुछ प्रश्न हैं (१) गुरु की पहचान क्या है अथवा गुरु को कैसे चुना जाए? (२) गुरु सही है या गलत इसकी पहचान क्या है? (३) क्या भगवान् को पाने के लिए गुरु करना आवश्यक है? क्या प्राचीन संतों (सूर, तुलसी, मीरा, कबीर... आदि) की वाणी का आश्रय लेने से भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती है? (४) क्या गुरु हमेशा सही होता है? (५) क्या शिष्य को हमेशा वही करना चाहिए जो गुरु कहे? (६) क्या गुरु बदला जा सकता है? (७) शिष्य के जीवन में गुरु की क्या भूमिका है? (८) क्या कोई ऐसे संत-भक्त का संग करके भगवान् को प्राप्त कर सकता है जो उसका गुरु नहीं है, केवल उसके प्रति एक सम्बन्ध का भाव है? ये गुरु संबंधी अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, जिनका श्रीबाबामहाराज ने विस्तार से शास्त्र-सम्मत उत्तर दिया है।

पहला प्रश्न है कि गुरु की पहचान क्या है ? इसको जानने के लिए सर्वप्रथम आधार शास्त्र ही है। श्रीमद्भागवत में नारदजी ने प्राचीनबर्हि को गुरु सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर दिया क्योंकि उनके सामने भी गुरु सम्बन्धी समस्या आई थी। प्राचीनबर्हि के द्वारा उनके गुरुओं ने वैदिक कर्मकांड संबंधी यज्ञ कराये थे, जिनमें अनेकों जीवों की हिंसा हुई थी। इसके बाद उनको नारदजी मिले। नारदजी ने कहा कि ये गुरु वास्तविक गुरु नहीं हैं, गुरु तो वही है जो लौकिक-वैदिक कर्मो को छुड़ाता है और केवल 'भगवान् की भक्ति' ही सिखाता है। नारदजी ने भागवत में प्राचीनबर्हि से कहा है कि तुम्हारे गुरुओं ने तुमसे इतने यज्ञ कराये कि इनके कारण तुम्हारा नाम प्राचीनबर्हि पड़ा, इन यज्ञों के द्वारा पूर्व दिशा कुशाओं से भर गई, अतः ये गुरु वास्तविक गुरु नहीं हैं। स्वयं प्राचीनबर्हि ने नारदजी से कहा कि आपने मुझे जो ज्ञान दिया, ऐसा ज्ञान मुझे आज तक कभी नहीं मिला था। नारदजी ने कहा कि कर्ममार्ग ठीक नहीं है, इससे तुम उत्तम गति को प्राप्त नहीं कर सकते। तुम्हारे गुरुओं ने इतने यज्ञ कराये कि इससे तुम्हारे अन्दर स्तब्ध भाव (ऐंठ) की वृद्धि हो गयी कि मैंने इतने यज्ञ किए हैं। अनेक पशुओं का वध करने से तुम्हारा अभिमान बढ़ गया किन्तु तुम्हें वास्तविक ज्ञान नहीं हुआ। तुम कर्म को जान नहीं पाए, अत्यधिक यज्ञ कराने से तुम्हारे गुरुओं ने इतना श्रम किया जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती किन्तु वह सब व्यर्थ हो गया क्योंकि इससे तुम्हारे अन्दर स्तम्भ भाव आया, मान की वृद्धि हुई। नारदजी ने कहा कि कर्म क्या है, इसे समझो।

तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया॥

(श्रीमद्भागवत ४/२९/४९)

कर्म तो वही उत्तम है, जिससे भगवान् संतुष्ट हो जाएँ और वास्तविक विद्या वही है, जिससे भगवान् में बुद्धि लग जाए। इसलिए जिस प्रकार भगवान् के चरणों की शरण मिल जाए वही मार्ग उचित है। इसके बाद प्रश्न है कि गुरु सही है अथवा गलत है, इसकी पहचान क्या है ? तो नारद जी ने बताया

स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ।
इति वेद स वै विद्वान् यो विद्वान् स गुरुर्हरिः॥

(श्रीमद्भागवत ४/२९/५१)

इस श्लोक में ही बहुत से प्रश्नों का उत्तर हो गया। गुरु शिक्षित है अथवा अशिक्षित है, इसका कोई महत्व नहीं है। गुरु वही है जो केवल इतना जानता है कि भगवान् ही प्रियतम है और उसके रास्ते पर चलने में कोई भय नहीं है, जो यह जानता है वही सच्चा विद्वान है तथा वही वास्तविक गुरु व भगवान् है। हम लोग गुरु नहीं हो सकते क्योंकि हम भगवान् को प्रियतम नहीं मानते हैं, धन और भोग को प्रियतम मानते हैं। गुरु तो वही है जो केवल भगवान् को प्रियतम मानता है क्योंकि वहाँ कोई भय नहीं है। धन और भोग में भय है। इस प्रश्न में बहुत से उत्तर हो गए। नारदजी ने गुरु चुनने का लक्षण बता दिया, गुरु सही है या गलत इसकी पहचान भी हो गयी।

जो गुरु करै शिष्य की आस। स्याम भजन ते भया उदास॥

श्रीभक्तमालजी में एक दोहा है -

गुरु जी लड़ें मुकदमा चेला जोतैं खेत।
भजन भाव जानैं नहीं पैसन ही सौं हेत॥

ऐसे लोग गुरु नहीं हो सकते, ऐसे लोगों को गुरु बनाने का मतलब है - पत्थर की नाव पर सवार होकर समुद्र पार करना। तीसरा प्रश्न है कि क्या गुरु आवश्यक है, क्या प्राचीन संतों की वाणियों का आश्रय लेने से भगवान् नहीं मिल सकते ? भागवत में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि जब तक तुमको कोई अच्छा गुरु नहीं मिलता है, तब तक तुम भगवान् को गुरु मान सकते हो, यद्यपि इसका वर्तमानकालीन गुरु लोग खण्डन करते हैं और कहते हैं कि गुरु करना आवश्यक है, उनका कहना भी उचित है परन्तु शास्त्र ये भी कहता है कि तुम भगवान् को भी गुरु मान सकते हो, इसका प्रमाण है भागवत का यह श्लोक -

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम्॥

(भागवत - ३/२५/३८)

स्वयं कपिल भगवान् ने कहा है कि जो मुझको ही सब कुछ

मान लेता है, वह काल पर विजय प्राप्त कर लेता है। जो मेरा शांत रूप है, जो उसके परायण है (उसमें मन लग गया है जिसका), उसका नाश कभी नहीं हो सकता। और तो क्या, 'काल' जो मेरा चक्र है वह भी उसको नहीं चाट सकता, जिसका प्यारा मैं हूँ। हम जैसे लोगों को धन, भोग, स्त्री, पुत्र आदि प्यारे हैं तो हमलोग उस ऊँचाई पर नहीं पहुँच सकते जिसका भगवान् यहाँ वर्णन कर रहे हैं। भगवान् कहते हैं कि जिसका एकमात्र मैं ही प्यारा हूँ अर्थात उसका प्रेम संसार में इधर-उधर नहीं बँटा, मैं ही उसका आत्मा हूँ, मैं ही उसका बेटा हूँ, सखा भी मैं हूँ, उसका गुरु भी मैं हूँ, उसका सुहृद, दैव तथा इष्ट भी मैं ही हूँ। इस सत्य सिद्धांत का निरूपण स्वयं भगवान् ने किया है कि तुम उन्हें गुरु मान सकते हो क्योंकि वे स्वयं कह रहे हैं। अब जो भगवान् की भी बात न माने, उससे वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। भगवान् ने रामायण में भी कहा है कि सर्वप्रथम मुझे ही गुरु मानो -

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड-१६)

यह उपदेश भगवान् राम ने लक्ष्मणजी के प्रति किया है, इसको 'राम-गीता' भी कहते हैं। जैसे - गीता में अर्जुन को भगवान् कृष्ण ने उपदेश दिया, उसी प्रकार यहाँ भगवान् राम ने लक्ष्मण को उपदेश दिया। यहीं पर भगवान् ने कहा है -

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड-१६)

'संत' का अर्थ गुरु भी हो सकता है और भक्त भी हो सकता है। अगर गुरु या भक्त अनुकूल है अथवा कोई भी भक्त यदि तुम्हारे अनुकूल है तो भक्ति और भगवान् की प्राप्ति हो जायेगी। उनका अनुकूल होना ही गुरु कृपा है।

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥

प्रथम साधन है, संत-चरणों में प्रेम होना। संत-चरण अथवा गुरु-चरण में प्रेम होने का फल क्या है ?

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड-१६)

यदि हमारे मन में वैराग्य नहीं है तो इसका तात्पर्य है कि हमारे मन में संत-भक्त अथवा गुरु के प्रति प्रेम नहीं है, ये सब ठोस बातें हैं। बिना वैराग्य के भगवान् में प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता। जब तक संसार में राग है तब तक भगवान् गुरु अथवा भक्त के प्रति राग नहीं हो सकता क्योंकि राग एक ही जगह रहेगा। हमारा धर्म क्या है ? तो भगवान् कहते हैं कि वह है - नवधा भक्ति।

श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥

नवधा भक्ति दृढ़ हो जाए तथा लीलाओं (भगवद्-गुणगान) में हमारा सुदृढ़ प्रेम हो जाए, यही विशुद्ध भक्ति है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥

संतों (भक्तों) के चरणों में अति अनुराग हो। केवल वेश-परिवर्तन करने से साधु नहीं बनते, जो तन-मन-वचन से आराधनरत है, वही असली आराधक है। इसके बाद भगवान् स्वयं कह रहे हैं -

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड-१६)

कोई नया आराधक है, उसका कोई गुरु नहीं हैं तो भगवान् कहते हैं कि गुरु मुझे मान लो, पिता, भाई और देवता भी मुझे मान लो, मुझे सब कुछ मान सकते हो। इसके बाद है - दृढ़ सेवा, मुझे सब कुछ मानने के बाद यदि मनुष्य सेवा अपने शरीर की तथा अपने स्त्री, बच्चों की कर रहा है तो यह ठीक नहीं है, सेवा केवल सेव्य (भगवान्) की होती है। यही बात महादेव जी भी कहते हैं

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड - १२)

हे पार्वती ! भगवान् के समान हित कोई नहीं कर सकता। भगवान् राम ने सुग्रीव को राज्य दिया, स्त्री दिया, साथ-साथ भक्ति भी प्रदान की। इसीलिए महादेवजी बोल उठे कि देखो, भगवान् के समान हित संसार मे कोई नहीं कर सकता, गुरु भी नहीं कर सकता **"गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥"** न गुरु हित कर सकता है, न माँ कर सकती है, न पिता कर सकता है, न भाई कर सकता है और न स्वामी हित कर सकता है क्योंकि सबमें स्वार्थ होता है। गुरु में भी यह स्वार्थ होता है कि मेरा शिष्य मेरे ही पास रहे, मेरी ही सेवा करे। यहाँ तक कि गुरु नाराज होकर शिष्य को बहिष्कृत भी कर देता है, ये विकृतियाँ सम्प्रदायों में भी हैं, उनके विरुद्ध जाने पर वे अपने समाज से निकाल देंगे, बहिष्कृत कर देंगें।

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

(रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड - १२)

इसी तरह भागवतजी के आठवें स्कन्ध में भी 'गुरु तत्व' के बारे में अधिक स्पष्ट वर्णन किया गया है। यहाँ पर हमारे जैसे स्वार्थी गुरुओं का खण्डन हो जाता है।

न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये॥

(भागवत ८/२४/४९)

सत्यव्रतजी ने कहा है कि कृपा तो भगवान् करता है, उनकी कृपा का दस हजारवाँ हिस्सा भी संसार के सारे देवता और गुरु मिलकर नहीं कर सकते अर्थात् कहीं न कहीं स्वार्थ रहता ही है। ऐसी घटनायें प्रायः होती रहती हैं कि अमुक गुरु ने रुष्ट होकर अपने शिष्य का त्याग कर दिया, अपने सम्प्रदाय से निकाल दिया। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि संसार के समस्त गुरु मिलकर भी भगवान् की कृपा का दस हजारवाँ हिस्सा नहीं पा सकते। प्रश्न है कि 'गुरु' शिष्य को निकालता क्यों है? तो इसका उत्तर सत्यव्रतजी ने आगे के श्लोक में दिया है

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम्॥

(भागवत ८/२४/५०)

संसार में प्रायः अन्धा अन्धे का गुरु बन जाता है। कोई अन्धा जा रहा था, उसने कहा कि कोई मुझे रास्ता बता दो, इतने में उसे एक दूसरा अन्धा मिला। वह बोला कि मैं तुम्हें रास्ता बताता हूँ, जबकि उसके चेहरे पर आँख का चिन्ह भी नहीं था लेकिन वह गुरु बन गया, अरे, उससे तो दूसरा अन्धा अच्छा है क्योंकि उसके चेहरे पर आँख का चिन्ह तो है। अधिकतर संसार में यही होता है कि हम जैसे आदमी गुरु बन जाते हैं, जो स्वयं मोहान्धकार में हैं और दूसरे को भी ले जाते हैं। इसीलिए सत्यव्रतजी कहते हैं कि ऐसे अन्धे गुरुओं को छोड़कर हम भगवान् को गुरु मानते हैं। इस संसार में नेत्र वाले को दृष्टि (देखने की शक्ति, प्रकाश) भी चाहिए क्योंकि बिना नेत्र-ज्योति के नेत्र वाला कैसे देखेगा? इसलिए भगवान् ही प्रकाश हैं और भगवान् ही नेत्र हैं, उनको गुरु मानने के बाद फिर किसी अन्य गुरु से प्रकाश लेने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए हम अपनी वास्तविक गति को जानने के लिए इन नकली गुरुओं (अज्ञान में अंधों) को छोड़कर आपको गुरु मानते हैं अर्थात् हमको अन्यत्र कहीं प्रकाश नहीं मिल सकता है क्योंकि समाज में विवेकहीन लोग अधिक हैं। ऐसी स्थिति में भगवान् को ही गुरु के रूप में वरण करना चाहिए, यह भागवत का प्रमाण है। वास्तविकता क्या है ?

लोभी गुरु लालची चेला, दोनों नरक में ठेलम-ठेला।

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम्॥

(भागवत ८/२४/५१)

हम जैसे लोग गुरु बन जाते हैं, जो समाज में विवेकहीनता का उपदेश करते हैं, संकीर्णता सिखाते हैं कि इतना ही सही है, अन्यत्र सब गलत है, हम सही हैं और संसार के लोग गलत हैं, यह असत्य मति (दुष्ट बुद्धि) है, इससे शिष्य दुरत्यय अन्धकार में पड़ जाता है। 'दुरत्यय' उस अँधेरे को कहते हैं जहाँ से मनुष्य कभी पार नहीं जा सकेगा। संकीर्ण-बुद्धि (सांप्रदायिक-द्वेष) होने से भक्तापराध करेगा और पतन की ओर अग्रसर होता जाएगा। इसलिए सत्यव्रतजी भगवान् से कहते हैं कि इससे अच्छा है कि हम आपको गुरु मानें क्योंकि श्रीभगवान् को गुरु मानने से अमोघ ज्ञान उपलब्ध होगा, जिससे निज-पद (भगवच्चरणों) की प्राप्ति होगी। रामायण और भागवत के बाद अब गीता का प्रमाण भी देख लो

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २/७)

अर्जुन ने भगवान् से कहा कि धर्म के सम्बन्ध में मेरा मन सम्मूढ़ हो गया है, ऐसी स्थिति में मैं क्या करूँ, क्या न करूँ, आप ही मुझे उचित मार्ग बताइये, मैं आपका शिष्य हूँ, अतः आप मेरे ऊपर शासन कीजिये क्योंकि मैं आपकी शरण में आया हूँ। अर्जुन के इन वचनों से स्पष्ट होता है कि भगवान् को गुरु माना जा सकता है। यही रामायण, गीता, भागवत आदि सभी शास्त्रों का मत है और हम इन्हीं ग्रंथों को आधार मानकर चलते हैं। हमें कभी तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए। भागवत (४/२९/५१) में इसी बात पर बल दिया गया है, नारदजी कहते हैं कि जो भगवान् को ही प्रियतम मानता है, वही गुरु है और वही भगवान् है, इसमें कोई संशय नहीं है परन्तु ऐसा गुरु संसार में सुदुर्लभ है। प्रायः गुरु रूप में हम जैसे पाखण्डी लोग ही मिल जाते हैं, जो सांसारिक धन और भोग को ही 'भगवान्' मानते हैं। जो धन के लिए सब कुछ छोड़ देते हैं, ऐसे लोग न तो गुरु हैं और न भगवान् हैं, वे कुछ नहीं हैं, ऐसे गुरुओं का अवश्य त्याग कर देना चाहिए। यह निरापद- निर्विघ्न मार्ग है जिसको रामायण में महादेवजी ने कहा है और श्रीमद्भागवत में सत्यव्रतजी ने कहा है कि भगवान् को ही गुरु मान लो। अंतिम प्रश्न है कि यदि कोई ऐसा संत है जिसके प्रति हमारा भाव है तो क्या उसका संग करने से भगवान् मिल सकते हैं ? इसका उत्तर भागवत के तीसरे स्कन्ध में ब्रह्मा जी ने दिया है कि जहाँ भाव है, वहीं भगवान् हैं।

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(भागवत ३/९/११)

जिस हृदय में भावयोग है, वह हृदय तो कमल बन गया, भगवान् का मंदिर हो गया। लक्ष्मीजी कमल में निवास करती हैं तथा कमल में ही भगवान् के चरण हैं, 'आस्से' अर्थात् सदैव विराजमान हैं। भगवान् को वही रूप धारण करना पड़ता है जो भक्त चाहता है। जिस प्रकार खम्भे से भगवान् नृसिंह रूप में प्रकट हुए, तो प्रह्लाद के भगवान् प्रकट हुए और हिरण्यकशिपु का काल प्रकट हुआ, जबकि खम्भा एक ही है। इसलिए यदि भाव है तो भगवान् की प्राप्ति अवश्य होगी।

हरि ब्यायक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - १८५)

यदि भाव नहीं है तो साधु, गुरु आदि कुछ भी बन जाओ फिर भी कुछ नहीं होगा। दण्डकारण्य में लाखों ऋषि थे, गोस्वामी तुलसीदासजी ने वर्णन किया है - **"मिलि मुनिवृन्द फिरत दण्डकवन, सो चरचौ न चलाई।"** वनवास से अयोध्या लौटने पर भगवान् ने कभी भी अभिमानमय अंतःकरण वाले उन ऋषियों की चर्चा नहीं की।

बारम्बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई॥

(तुलसी-विनयपत्रिका - १६५)

जबकि मांसभोजी जटायु और अधम जाति की भीलनी शबरी की बारम्बार चर्चा की क्योंकि इनमें विशुद्ध भाव (दैन्यमय, अहंशून्य भाव) था। इसीलिए सैकड़ों यज्ञ करने के बाद राजा प्राचीनबर्हि ने उन यज्ञों को कराने वाले गुरुओं का त्याग कर दिया और नारदजी को गुरु रूप में वरण किया। इससे शिक्षा मिलती है कि यदि वास्तविक गुरु मिल गया है तो नकली गुरु का त्याग कर दो, जब वे सद्गुरु (सच्चे गुरुदेव) ही भगवान् हैं तो फिर सन्देह का कोई प्रश्न ही नहीं है।

❑❑❑

मानमंदिर की गतिविधियाँ

ब्रज संस्कृति की पताका फहराती हुई बाल साध्वी मुरलिका जी शर्मा कई देशों के दौरे पर

ब्रजबालिका साध्वी मुरलिका जी अपने अनुज सहित जो आजकल श्रद्धेय डा.रामजी लाल शास्त्री के निर्देशन में प्रवास पर हैं। आप लोककल्याण की उत्कृष्ट भावना से कलिमलत्रासित संतप्त जीवों के लिए ही मानो अवतरित हुई हैं, निष्काम भाव से अपनी रसमयी वाणी के द्वारा लोकपावनी सिद्ध हो रही हैं।

अमेरिका में भक्त वैष्णवों के आह्वान पर ब्रज संस्कृति से परिचित कराती हुई वहाँ के जनमानस में लब्धख्याति हो रही हैं। अनेक विद्वानों ने उनकी प्रशंसा में अपनी विचाराभिव्यक्ति प्रेषित की है। इस बार मुरलिका जी ने अमेरिका के साथ ही कनाडा में भी अपने ओजस्वी भाषण से लोगों को लाभान्वित किया। कनाडा में उनके द्वारा सांस्कृतिक आयोजन प्रथम बार ही हुआ, वहाँ जिस मंदिर में उनका पदार्पण हुआ, वह कनाडा का सबसे बड़ा हिन्दू–मंदिर था। मुरलिका जी की दिव्य वाणी का वहाँ के जनमानस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि कनाडा के उस सबसे बड़े हिन्दू–मंदिर के अध्यक्ष ने मुरलिका जी की प्रशस्ति में एक पत्र लिखकर भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा – ***"मैं कनाडा के हिन्दू–मंदिर समूह एवं मंदिर–प्रबंधन की ओर से आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ जो आपने हमारे मंदिर में ऐसे दिव्य ब्रजवासियों को भेजा। हमारा मंदिर कनाडा में सबसे बड़ा है और उसमें सबसे अधिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ है परन्तु सुश्री मुरलिका जी के द्वारा जो सांस्कृतिक कार्यक्रम यहाँ हुआ, वह हमारे मंदिर में अब तक संपन्न हुये अन्य समस्त कार्यक्रमों में सर्वोच्च स्तर का था, मुरलिका जी ने जिस प्रकार अपनी रसमयी वाणी के द्वारा यहाँ के श्रोताओं को सम्बोधित किया, ऐसी रसमयी धारा हमारे मन्दिर में आज तक पहले कभी प्रवाहित नहीं हुई। हमारे यहाँ के भक्तों का समूह दीर्घकाल तक उनकी दैवी–वाणी को आने वाले दिनों में अपने हृदय में आत्मसात किए रहेगा। यहाँ का प्रत्येक श्रोता मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा कर रहा है। मैं श्रीबाबामहाराज के प्रति अपार हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपने शिष्यों को इस प्रकार गहन प्रशिक्षण दिया है कि वे निष्काम भाव से सम्पूर्ण विश्व में ब्रज संस्कृति का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं।"***

Navnish ji
Radhe Radhe.
On behalf of the Hindu Mandir congregation and management I would like to thank you for introducing us to the Brajwasi's.
Our Mandir has held scores of Bhaghwat Kathas, but the last one performed by Murlika ji was one of the best ever held at our temple.
The congregation will cherish the Devine words for long time to come. The compliments have been pouring in by every listener .
My sincere and deepest gratitude is towards your Maharaj Ji for training the disciples so they are able to spread the Hari Naam across the world.
Sincere salutations
Subhash Khanna
Chairman
Hindu Mandir
DDO.
Quebec. Canada

फिजी में ब्रज–संस्कृति का प्रचार–प्रसार

श्रीमानमन्दिर के संत एवं साध्वियाँ देश–विदेश में ब्रजभूमि की विलक्षण संस्कृति का प्रचार–प्रसार करने में संलग्न हैं। इसी क्रम में मानमंदिर की ओजस्वी वक्त्री ब्रजबालिका साध्वी श्रीजी इन दिनों फिजी की यात्रा पर हैं। उनके साथ साध्वी किशोरी जी, साध्वी गौरी जी एवं संत श्रीनृसिंहदासजी तथा संत श्रीगिरधरदास भी गए हुए हैं। वे फिजी में ग्यारह सप्ताह तक प्रवास करेंगे। साध्वी श्रीजी अपनी रसमयी वाणी द्वारा फिजी की जनता में ब्रज–संस्कृति के अनुपम भावों का निष्काम भाव से वितरण कर रही हैं।

दीदी जी गुरुकुल के नवीन भवन का उद्घाटन

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान जो सतत् प्रयासरत है कि भारतीय

संस्कृति के सरंक्षण के साथ-साथ उसका संवर्धन हो ताकि भाव-भक्ति, मैत्री, सहिष्णुता आदि दिव्य गुणों से लोगों को संपन्न बनाया जा सके, इसी सन्दर्भ में संस्था में रहने वाले बालकों के लिए नवीन गुरुकुल भवन का शुभारम्भ पूज्य गुरुदेव श्रीरमेशबाबा द्वारा दिनांक ०५/०५/२०१७ को किया गया। यद्यपि बच्चे तो दीर्घकाल से यहाँ दिव्य संस्कारों को प्राप्त कर ही रहे थे परन्तु विधिवत व्यवस्था के लिए आवश्यकतानुसार निर्मित नवीन 'गुरुकुल भवन' जो आवश्यक था, तैयार किया गया, जो बाबाश्री के द्वारा उद्घाटनोपरांत संचालित हुआ।

रसीली ब्रज यात्रा द्वितीय खण्ड का प्रकाशन अतिशीघ्र .....

मान मन्दिर सेवा संस्थान द्वारा 'रसीली ब्रजयात्रा' ग्रन्थ के प्रथम खण्ड का प्रकाशन किया गया था जिसमें चौरासी कोस के क्षेत्र में स्थित ब्रजभूमि की लीला स्थलियों का प्रामाणिक वर्णन किया गया था। इसी श्रंखला में अतिशीघ्र ही रसीली ब्रजयात्रा ग्रन्थ का द्वितीय खंड भी प्रकाशित होकर आपके समक्ष प्रस्तुत होने वाला है, जिसमें चौरासी कोस से भी अधिक क्षेत्रफल में विस्तृत बृहद ब्रज का वर्णन किया गया है। अनन्त श्रीयुत् श्रद्धेय श्री रमेश बाबा महाराज जी की कृपा पात्रा ब्रजबालिका साध्वी सुश्री मुरलिका शर्मा जी ने शास्त्रों और ब्रजनिष्ठ महापुरुषों की वार्णी के आधार पर ही सीमावर्ती सुदूर ब्रजलीला स्थलियों की इस पुस्तक में चर्चा की है।

फिजी रेडियो पर युवा पीढ़ी के लिये सन्देश

(ब्रज बालिका श्रीजी शर्मा द्वारा)

मान मंदिर की ओजस्वी प्रवक्त्री साध्वी श्री जी शर्मा इन दिनों ब्रज-संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु फिजी के दौरे पर हैं। उनके सशक्त प्रवचनों का वहाँ के जनमानस पर अनुपम प्रभाव हुआ। फिजी की जनता में उनकी लोकप्रियता को देखकर वहाँ के रेडियो स्टेशन पर उन्हें आमंत्रित किया गया। दो महिला इंटरव्यू कर्ताओं ने उनसे बातचीत की। साध्वी श्री जी के साक्षात्कार से प्रभावित होकर उन्होंने कहा कि फिजी में उनके सांस्कृतिक कार्यक्रमों का वर्ष भर तक रेडियो स्टेशन द्वारा प्रसारण किया जायेगा। प्रस्तुत है फिजी रेडियो स्टेशन पर ब्रजबालिका श्रीजी शर्मा के साक्षात्कार का संक्षिप्त अंश -

प्रश्न :- सर्वप्रथम हम अपने स्टूडियो में भारत वर्ष से पधारी बाल साध्वी श्री जी शर्मा का हार्दिक स्वागत करते हैं। यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि भारत से इतनी अल्पायु की कोई बालिका हमारे देश फिजी में आई हुई है और अत्यधिक ओजस्वी प्रवचन करती हैं। यह हमारे लिए अतिशय महत्वपूर्ण और गौरव का विषय है। अब आप यह बतायें कि आपने कितनी उम्र से प्रवचन करना प्रारम्भ किया ?

उत्तर : - मैंने दस वर्ष की अवस्था से प्रवचन का शुभारम्भ किया था।

प्रश्न :- क्या तब से आप लगातार प्रवचन कर रही हैं ? आपके प्रवचन कार्यक्रम का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर :- हाँ, मैं तब से सतत् प्रवचन करने में संलग्न हूँ। ब्रज की अभूतपूर्व संस्कृति से समाज को अवगत कराना ही मेरा लक्ष्य है और इसी उद्देश्य से हम देश-विदेश में भ्रमण करते रहते हैं।

प्रश्न :- क्या आपके गुरुदेव भी आपके साथ फिजी आये हैं ?

उत्तर :- नहीं, हमारे गुरुदेव श्रद्धेय श्री रमेश बाबा महाराज जी भारतवर्ष में ब्रजभूमि में ही अखंड वास करते हैं। वह ब्रज के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर नहीं जाते हैं। उन्होंने ही हमें प्रेरणा दी कि देश-विदेश में जाकर लोगों को ब्रज की अलौकिक संस्कृति तथा भागवतधर्म (भक्ति) से अवगत कराओ। उन्हीं की प्ररणा से हम लोग यहाँ आये हैं।

प्रश्न :- कृपया अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि का भी परिचय दें।

उत्तर :- मेरे परिवार में हम पाँच भाई-बहन हैं, माता-पिता हैं , ताऊजी पंडित श्री राम जी लाल शर्मा श्रीमद्भागवत के प्रख्यात प्रवक्ता हैं। दो बुआजी हैं जिन्होंने भक्तिमय जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से विवाह नहीं किया। बरसाने के हमारे आवासस्थल श्रीराधारस मंदिर से प्रतिदिन हजारों भक्तों को भोजन प्रसाद पवाने की निष्काम सेवा हुआ करती है। फिजी में मेरे साथ मेरी छोटी बुआ साध्वी किशोरी जी भी आई हैं जिन्होंने मेरी बाल्यावस्था से ही मेरा मातृवत् पालन-पोषण करके मुझे आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रेरित किया। इनके अतिरिक्त हमारे साथ परम पूज्यनीय संत श्री नरसिंह दास महाराज जी भी आये हैं जो एक विख्यात भजन गायक, वंशीवादक और ओजस्वी प्रवचन कर्ता भी हैं। ब्रजवासी संत श्रीगिरधरदासजी भी हमारे साथ हैं जो प्रसिद्ध ढोलक वादक हैं, इनके साथ ही मेरी बचपन की सहचरी साध्वी गौरी जी भी प्रथम बार फिजी में आई हैं, वह कुशल भजन गायिका हैं।

प्रश्न :- इससे पता चलता है कि आपका समस्त परिवार और आपके सभी सहयोगीगण जनकल्याण और जन-सेवा के प्रति पूर्ण रुप से समर्पित हैं।

उत्तर :- जी हाँ।

प्रश्न :- आपके भाई-बहन क्या करते हैं ?

उत्तर :- मेरी बड़ी बहन साध्वी मुरलिका जी विश्व स्तर की विद्वान भागवत प्रवक्त्री हैं। मेरे बड़े भाई राधिकेश जी भी विद्वान भागवत प्रवक्ता हैं। ये दोनों ही देश-विदेश में भ्रमण कर ब्रज-संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार करने में संलग्न रहते हैं।

प्रश्न :- क्या आप पिछले वर्ष भी फिजी आई थीं ?

उत्तर :- हाँ, हम लोग पिछले वर्ष भी यहाँ आये थे किन्तु तब समय का अत्यंत अभाव था, हमारा कार्यक्रम यहाँ के लोगों ने बहुत पसंद किया था इसीलिए इस बार कार्यक्रम की अवधि दीर्घकालीन रखी

गई है। ब्रज-संस्कृति से संबंधित एक सांस्कृतिक कार्यक्रम हो चुका है, अब दूसरा कार्यक्रम भी जारी है। इसके बाद फिजी के अन्य कई बड़े शहरों में भी हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रमों का प्रबंध किया गया है।

प्रश्न :- जब आप प्रवचन करती हैं तो आपको कैसा अनुभव होता है ? प्रथम बार जब आपने प्रवचन का शुभारम्भ किया था तब आपको कैसा लगा था क्योंकि किसी बच्चे को अचानक ही यह कहा जाए कि तुमको यह कार्य करना है तो उसके मन में थोड़ा असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि यह कार्य कैसे किया जाये, कैसे होगा? इसी प्रकार आपको भी प्रथम बार के अपने कार्यक्रम में कैसा लगा था ?

उत्तर:- मैं प्रारंभ से ही अपने गुरुदेव के सानिध्य में रही हूँ इसलिए सत्संग, कथा-कीर्तन में ही मेरा सम्पूर्ण काल व्यतीत हुआ। अन्य बच्चे बाल्यावस्था के खेलकूद आदि जिन क्रियाकलापों से जुड़े रहते हैं, उनसे मैं सर्वथा दूर रही। गुरुदेव की कथा का श्रवण करना, प्रवचन करना, संगीत के वाद्ययंत्र हारमोनियम, ढोलक आदि का अभ्यास करना, यही हमारा खेल था, यही हमारा सर्वस्व था, यही हमारी दिनचर्या थी इसलिए प्रवचन की प्रारंभिक स्थिति मेरे लिए नवीन नहीं थी, सब कुछ पूर्णतया स्वाभाविक और सहज ही प्रतीत हुआ।

प्रश्न :- वर्तमान काल की युवा पीढ़ी को आप क्या सन्देश देना चाहती हैं ?

उत्तर :- आधुनिक युग की युवा पीढ़ी भौतिक क्रियाकलापों, भौतिक विकास की ओर जितना उन्मुख है, आध्यात्मिक उन्नति के नाम पर उतना ही विमुख होती जा रही है। अत्यंत दु:खद स्थिति यह है कि आजकल के युवागण पश्चिमी सभ्यता का पूर्णरूपेण अन्धानुकरण करने में लगे हैं और भारतवर्ष की गौरवशाली आध्यात्मिक संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। युवा पीढ़ी को मेरा यही सन्देश है कि आध्यात्मिक प्रगति के बिना भौतिक विकास का कोई महत्त्व नहीं है। युवा वर्ग को चाहिए कि अन्य भौतिक क्रियाकलापों के सहित भगवद्-चिंतन, ईश्वर की आराधना, आध्यात्मिक क्रियाकलापों पर विशेष ध्यान दें तभी आप जीवन में वास्तविक प्रगति कर सकेंगे और भौतिकतावादी जीवन से उत्पन्न समस्त क्लेशों से मुक्त होकर यथार्थ सुख-शांति और परमानन्द की अनुभूति कर सकते हैं। कोई भी कार्य करें, उसमे भगवद्-स्मरण, भगवद्-आराधना से विमुख न हों। आध्यात्मिक ग्रंथों का, संत-महापुरुषों का और प्राचीन भारतीय संस्कृति का सम्मान करें तथा इनके द्वारा निरुपित सिद्धातों के पालन करने का पूर्णरूपेण प्रयास करें।

प्रश्न :- फिजी में आप अपनी इच्छा से आयी हैं या अपने गुरुदेव की आज्ञा से ?

उत्तर :- हमारे गुरुदेव ने हमें जो शिक्षा दी, हमें जो विचार प्रदान किये, हमारे लिये वही सर्वप्रमुख है, अपने स्वयं के विचारों का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं है। अत: गुरुदेव की हमारे प्रति फिजी जाने की आज्ञा हुई तो उनकी आज्ञानुसार हम लोग यहाँ आये हैं।

प्रश्न :- बच्चों के प्रति माता-पिता का क्या कर्तव्य है? इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर :- सनातन धर्म के शास्त्रों में माता-पिता को ही बालकों का सर्वप्रथम गुरु बताया गया है। माता-पिता का जैसा आचरण होता है, उनके क्रियाकलापों का बच्चों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। इसलिए माता-पिता के लिए यह आवश्यक है कि वे आध्यात्मिक आचरण, भगवद्-भक्ति को अपनायें। जब तक वे स्वयं अपने जीवन को ईश्वरीय-उपासना, भक्तिमय क्रियाकलापों से नहीं जोड़ेंगे तब तक न वे बच्चों को इस सम्बन्ध में शिक्षा दे सकते हैं और न ही बच्चे अध्यात्म पथ, ईश्वरीय जगत की ओर जागरूक हो सकेंगे।

हरिनाम-प्रचार फिरोजाबाद में

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान की सेवाओं में जनकल्याण की भावनाओं का प्रमुख स्थान है। यही कारण है कि यहाँ के बालक-बालिकायें पूज्य श्रीबाबामहाराज की प्रेरणा से समग्र राष्ट्र में अपनी निष्काम हरिनाम-प्रचार सेवा द्वारा राष्ट्रहित में लगे हुए हैं। कलिकाल की भयावह ज्वाला में जलते जीवों में आज इतनी सामर्थ्य कहाँ कि वे कठोर तप, यज्ञ, स्वाध्याय अथवा अन्य दानादि कार्य कर उस ज्वाला के घोर कष्ट से त्राण पा सकें। इस कलिकाल में नाम से बड़ा कोई साधन है ही नहीं, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है-

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -१३०)

महापुरुषों की वाणियों को आधार मानकर सर्वत्र यह सत्प्रेरणा सर्वदा दी जाती रही है। अभी 'दिनांक - ०५/०६/२०१७ से ०६/०६/२०१७ तक' दो दिवस में फिरोजाबाद जनपद के दर्जनों गाँवों में हजारों लोगों को जून मास की भयंकरतम तपती धूप और गर्म हवाओं में भी अन्तस्थ को शीतलता प्रदान करने वाली अपनी सत्संग रसधारा से सुखद अनुभूति कराने का पुनीत कार्य अपनी वाणी से किया। साध्वी-रामादेवी, वत्सला, गोपाली देवी तथा नवलश्री 'जिनकी पावन रहनी स्वत: ही हम जैसे क्षुद्र जीवों के लिए एक प्रकाश-प्रदायिनी सिद्ध हो रही है' ने ग्राम बनीपुरा, रैपुरा, शेखूपुरा, गढ़िया, नैपई, महमदपुर, भीकनपुर, बबाइन, आदि गावों में नाम-महिमा की प्रतिष्ठा किया। भगवन्नाम से इहलोक क्या परलोक आदि सबकी ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस सन्दर्भ में मलूकदास, कबीरदास आदि के पावन उद्धरणों के साथ-साथ मानमंदिर सेवा संस्थान द्वारा चलाई जा रही निष्काम सेवाओं का भी उल्लेख किया। समस्त जनमानस भगवद्गुणों के रस सागर में निमग्न हो आत्मविभोर हो गया।

❑❑❑

मानमंदिर के विश्वकर्मा – संत श्रीराजकुमारजी महाराज

संत–महापुरुषों व शास्त्रवचनानुसार 'धाम' विभु है, इसकी सेवा साक्षात् अपने आराध्य की सेवा है। महासदाशया मानिनी की नित्य लीलास्थली गह्वरवन, मानमंदिर में श्रीबाबामहाराज के सत्संग से प्रभावित होकर सैकड़ों साध्वियाँ व संतजन सुदृढ़ निष्ठा के साथ धामवास करते हुए निष्काम भक्तिभाव से धाम–सेवा में संलग्न हैं। ब्रज–संस्कृति का प्रत्यक्ष दर्शन बाबाश्री की नित्य सायंकालीन आराधना (महारासोत्सव) में होता है, जहाँ सैकड़ों आराधिकाएँ नित्य 'नृत्य–गान' कर सम्पूर्ण विश्व का मंगल करती हैं। मानिनी के मानभवन (मानमन्दिर) में भारतभूमि के विभिन्न प्रान्तों के साधक साधनरत् हैं, जो आपस में एक माला के मनके की तरह मिलकर संकीर्तन व सेवाराधन कर रहे हैं, उसी माला का एक मनका हैं संत श्रीराजकुमारजी महाराज, जिनका व्यक्तित्व अन्य आराधकों के लिए एक आदर्श बन चुका है, इनकी सेवाराधना को देखकर पूज्य श्रीबाबामहाराज इन्हें 'विश्वकर्मा' के नाम से संबोधित करते हैं। आपकी सेवा के प्रति तत्परता श्रीहनुमानजीमहाराज के सदृश है, '**राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम**' इस सुदृढ़ भावना से भावित आपकी सेवाकार्य–शैली ही ऐसी है कि प्रातः से संध्या तक आपका प्रत्येक क्षण केवल और केवल धाम–सेवा (मानमंदिर द्वारा संचालित ब्रज–सेवा के विविध कार्यों) में ही व्यतीत होता है। धाम के प्रति यह सुदृढ़ निष्ठा आपको पूज्य श्रीबाबामहाराज की रसमयी आराधना से प्राप्त हुई, बाबाश्री की स्वरचित कृति 'बरसाना' में ब्रजनिष्ठा के पद हैं –

१. झोंपड़ी ब्रज में बना ली जाएगी। ब्रज की रज तन में रमा ली जाएगी॥ श्याम प्यारे अब हमारे हो गये। अब उन्हीं से लौ लगा ली जाएगी॥

२. मरना तेरी गली में, जीना तेरी गली में।

३. हम जिंदगी लुटाने आये हैं तेरे दर पर।

इन ब्रजभावभावित पदों को श्रीबाबामहाराज द्वारा संगीतमयगान में साक्षात् श्रवण करने से आप पर विशेष प्रभाव पड़ा और निष्ठापूर्वक धामवास व धामसेवा का सुदृढ़ संकल्प कर लिया।

वैष्णव–ग्रन्थों में धामसेवा और धामी (श्रीठाकुरजी) की सेवा को एक ही बताया गया है। धाम साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप है।

"पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकं" (बृहद् गौतमीयतंत्र)

अथवा ये कहें कि धामी से धाम श्रेष्ठ है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। धामनिष्ठ रसिक संत श्रीभट्टजी महाराज ने तो यहाँ तक कहा है –

"विपिनराज सीमा के बाहर हरिहू को न निहार।"

धाम वह शक्ति है जो उपासक को उपास्य से मिला देती है, इसीलिए तो धाम को वैकुण्ठ से श्रेष्ठ बताया गया है –

"अहो मधुपुरी
रम्यावैकुण्ठाच्चगरीयसी।"

(वाराह पुराण)

जिस प्रकार रसिकजन नामी से नाम को व भगवान् से भक्तों को श्रेष्ठ मानते हैं, उसी प्रकार धामनिष्ठ संतजन धाम को धामी से श्रेष्ठ मानते हैं। जो धामनिष्ठ प्रेमीजन होते हैं वे तो इस धाम को छोड़कर वैकुण्ठ आदि नित्यधाम में भी नहीं जाना चाहते हैं। धाम में प्रेम होना ही विशुद्ध प्रेममयी भक्ति है और धाम की सेवा से ही धामप्रेम परिपुष्ट होता है, इस निष्ठा का परमादर्श उदाहरण हैं – श्रीकृष्णप्रेम की ध्वजा स्वरूपा ब्रजगोपीजन।

श्रीमीराबाई के शब्दों में – श्रीमीराजी ने भी धामसेवा की याचना गिरिधरगोपाल से की है –

स्याम म्हाने चाकर राखो जी, गिरिधारी लाल चाकर राखो जी।

चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ
वृन्दावन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूँ॥
हरे-हरे नित बाग लगाऊँ, बिच-बिच राखूँ क्यारी।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहर कसूंभी सारी॥

स्वामी श्रीहरिदासजी की वाणी में–

मन लगाय प्रीति कीजै, कर करवा सौं ब्रज-बीथिन दीजै सोहनी।
वृन्दावन सौं, बन-उपवन सौं, गुंज-माल हाथ पोहनी॥
गो गो-सुतन सौं, मृगी मृग-सुतन सौं, और तन नैंकु न जोहनी ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी सौं चित, ज्यौं सिर पर दोहनी॥

श्रीमद्भागवतानुसार –

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित्॥

(भागवत ४/२१/३१)

'सेवा' एक ऐसा भाव है कि सेवा करना तो दूर अगर हृदय में सेवा करने की स्वल्प रुचि भी उत्पन्न हो जाय तो उसी समय अनेक जन्मों का बुद्धि में अर्जित मल अहंकार ('अहं' के कारण जीव अनादिकाल से भगवद्विमुख है) नष्ट होने लगता है। सेवा में सात गुण ग्राह्य हैं –

विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ।
शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः॥

(भागवत ३/२३/२)

विश्वास, पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम, मधुर वाणी आदि।

सेवा में सात अवगुण त्याज्य हैं

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम्।
अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत्॥

(भागवत ३/२३/३)

कामना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप, मद और प्रमाद ।

सेवा में सर्वप्रथम ग्राह्य गुण है विश्वास। इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध कथा है – सिक्खधर्म के प्रवर्तक श्रीगुरुनानकदेवजी ने एकबार अपने शिष्य मरदानाजी से कहा कि एक चबूतरे का निर्माण करो। गुरु आज्ञा का पालन करते हुए तुरन्त उन्होंने एक चबूतरे का निर्माण कर दिया किन्तु गुरुदेव ने आज्ञा दी कि अब इसे तोड़ दो तो उन्होंने तोड़ दिया। गुरुनानक बोले कि इसका पुनर्निर्माण करो तो गुरु आदेशानुसार मरदाना जी ने चबूतरे को पुनः निर्मित कर दिया। नानक जी ने तुरन्त ही अपने शिष्य को पुनर्निर्मित चबूतरे को फिर से तोड़ने का आदेश दिया तो अनन्य गुरुभक्त मरदानाजी अविलम्ब आज्ञापालन करने में संलग्न हो गये। इस प्रकार गुरुनानकजी कई बार मरदानाजी से चबूतरे का निर्माण करने और तोड़ने का आदेश देते रहे और गुरुनिष्ठ शिष्य बिना किसी हिचकिचाहट के गुरु–आज्ञापालन में लगे रहे।

किसी ने मरदानाजी से कहा – तुम्हारे गुरुजी का मस्तिष्क विकृत हो गया है, तुम इस प्रकार कब तक व्यर्थ में परिश्रम करते रहोगे? मरदानाजी ने उत्तर दिया कि गुरुवाणी अमोघ होती है, अगर सम्पूर्ण जीवन भी मुझे उनके इस आदेश का पालन करना पड़े तो मैं जी जान से उसमें जुटा रहूँगा। इसे कहते हैं – विश्वास, जो कि सेवा के लिए सर्वप्रथम परमावश्यक गुण है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीराजकुमारजी हैं, जो पूज्य श्रीबाबामहाराज के आदेशानुसार सदैव ही सम्पूर्ण श्रद्धा–विश्वास के साथ सेवा–कार्यों में तत्पर रहते हैं।

संत श्रीराजकुमारजी महाराज का जन्म सन् २०/०६/१९८२ को उत्तर प्रदेश, बदाँयू जिले के ग्राम सादुल्लागंज में हुआ। आप सन् २१ जून १९९६ में अपने बड़े भाई (बुआजी के पुत्र) के साथ श्रीधाम वृन्दावन में श्रीमद्भागवत व संस्कृत का अध्ययन करने के लिए आये। यहाँ आकर 'धर्मसंघ संस्कृत विद्यालय (वृन्दावन)' में संस्कृत का अध्ययन करने लगे, कुछ समयोपरान्त संगीत सीखने की जिज्ञासा हुई। आप ही के शब्दों में – "किसी से जानकारी मिली कि श्रीमानमंदिर, गहवर वन, बरसाना में संत श्रीरमेशबाबाजी महाराज विराजते हैं जिन्हें संगीत का उत्कृष्ट ज्ञान है, बस यही जिज्ञासा मुझे मानमंदिर ले आयी। वह शुभ दिन था १ दिसम्बर २००३, जब पूज्य श्रीबाबामहाराज से भेंट हुई तो अपनी उत्कण्ठा व्यक्त की – क्या मैं मानमन्दिर पर संगीत सीख सकता हूँ? बाबा ने कहा – हाँ, क्यों नहीं। मैंने

कहा कि मैं कुछ सामान लेकर नहीं आया हूँ। पुनः बाबा बोले – 'यहाँ तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा, आ जाओ।' आया तो था दो माह के लिए किन्तु पूज्य श्रीबाबामहाराज के सत्संग ने मुझे सदा के लिए रोक लिया।" जब राजकुमारजी से पूछा गया कि आपके जीवन का उद्देश्य क्या है तो इन्होंने कहा कि उद्देश्य क्या होता है, मैं जानता ही नहीं हूँ, बस श्रीबाबा महाराज मिल गये तो ऐसा लगा कि सब कुछ मिल गया। श्रीबाबामहाराज एवं भैयाजी (मानमन्दिर के व्यवस्थापक श्रीराधाकान्त शास्त्री जी) से अत्यधिक स्नेह मिला। सेवा क्या होती है ? मैं जानता भी नहीं हूँ। पूज्य श्रीबाबामहाराज के आशीर्वाद से सभी सेवा–कार्य सम्पन्न होते हैं, बाबाश्री की कृपा–शक्ति कार्य करती है, जो–जो संकल्प श्रीबाबामहाराज ने लिए हैं, वे सहज में पूर्ण हुए हैं।

आपमें एक अल्प दोष है 'आवेश आ जाना' किन्तु भक्तों में जो दोष होता है, वह गंगाजी के फेन की तरह होता है

दृष्टैः स्वभाव जनितैर्वपुषश्च दोषैर्न प्राकृतत्त्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्।
गङ्गाम्भसां न खलु बुद्बुद्फेन पङ्कैर्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीरधर्मैः॥६॥

(श्रीरूपगोस्वामीजी कृत उपदेशामृतम्)

इनके आवेश से लाभ ही होता है, जैसे – एकबार सेवा में किसी कारणवश साधुओं का सहयोग न मिलने से खिन्न होकर वह बोले कि हम मंदिर छोड़ कर जा रहे हैं (ये भक्तों की विचित्र लीला ही है)। श्रीबाबामहाराज ने पूछा – "क्या तुमने मानमन्दिर की साध्वियों से सहयोग के लिए कहा है?" तो आप बोले कि मैंने नहीं कहा है। तब श्रीबाबामहाराज ने कहा कि एकबार उनसे श्रमदान का आग्रह करके देखो। जब इन्होंने देवियों से सहयोग की प्रार्थना की तो तत्क्षण समस्त साध्वियाँ अपने गह्वरवन के आवासस्थल 'रस कुञ्ज' से श्रमदान करने के लिए मानमन्दिर पर आ गयीं और तीन दिन की सेवा को इन अलौकिक आराधिकाओं ने अपने अथक परिश्रम के द्वारा ६ घण्टे में ही सम्पूर्ण कर दिया। श्रीराजकुमारजी का आवेश शांत हो गया और प्रसन्न होकर बोले – "अब मैं मानमंदिर छोड़कर कभी नहीं जाऊँगा।"

कुण्ड–सरोवरों का जीर्णोद्धार व पुनर्प्राकट्य, वन–पर्वतों की रक्षा, दिव्य भवनों का निर्माण–कार्य आदि विविध धाम–सेवायें श्रीराजकुमारजी कर रहे हैं, इसलिए श्रीबाबामहाराज ने इन्हें 'मानमन्दिर के विश्वकर्मा' नामक उपाधि दी है। जैसे – देवताओं के शिल्पकार 'विश्वकर्माजी' ने बरसाना, नन्दगाँव, द्वारिकापुरी का निर्माण किया था। इसका वर्णन श्रीगर्गसंहिता में आता है

सभामण्डपसंयुक्तं सदुर्गं परिखायुतम्।
चतुर्योजनविस्तीर्णं सप्तद्वारसमन्वितम्॥
सरोवरैः परिवृतं राजमार्गं मनोहरम्।
सहस्रकुञ्जं च पुरं बृषभानुरचीक्लृपत्॥

(श्रीगर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड – ४/९,१०)

"श्रीवृषभानुजी ने अपने लिए श्रीविश्वकर्माजी से वृषभानुपुर (श्रीधाम बरसाना) नामक नगर का निर्माण कराया, जो चार योजन विस्तृत दुर्ग के आकार में था, उसके चारों ओर खाइयाँ बनी थीं। उस दुर्ग के सात दरवाजे थे। दुर्ग के भीतर विशाल सभामंडप था। अनेक सरोवर उस दुर्ग की शोभा बढ़ा रहे थे। बीच–बीच में मनोहारी राजमार्ग का निर्माण कराया गया था। एक सहस्र कुंजें उस पुरी की शोभा बढ़ाती थीं।"

इसी तरह द्वारकापुरी का वर्णन मिलता है

स्वज्ञातिबन्धुरक्षार्थं समुद्रे भीमनादिनि।
चकार द्वारकादुर्गमेकरात्रेण माधवः॥
यत्राष्टदिक्पालसिद्धिर्विश्वकर्मविनिर्मिता।
सर्वा वैकुण्ठसम्पत्तिर्दृश्यते मोक्षकांक्षिभिः॥

(गर्गसंहिता, द्वारकाखण्ड – २/८,९)

अपने सजातीय बंधुओं के रक्षार्थ भीषण गर्जन करने वाले समुद्र में भगवान् श्रीकृष्ण ने एक रात में द्वारका दुर्ग का निर्माण करा दिया। विश्वकर्माजी ने वहाँ आठों लोकपालों की सिद्धियाँ निर्मित कर दीं। उस द्वारका में वैकुंठाभिलाषियों को वैकुण्ठ की समस्त संपदा प्रत्यक्ष दिखाई देती थी।"

उसी प्रकार पूज्य श्रीबाबामहाराज 'राजकुमारजी' को मानमंदिर का विश्वकर्मा मानते हैं क्योंकि आपके द्वारा श्रीबाबा के मार्गदर्शन में धाम–सेवा के बड़े–बड़े असम्भव कार्य सम्पन्न हुए हैं और हो रहे हैं। जैसे–

'देव सरोवर'

तत्र देवसरो रम्यं बद्रिनाथेन निर्मितम्।

(श्रीगर्गसंहिता, मथुराखण्ड - २०/३९)

जिसे भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायण ने भगवान् श्रीराधाकृष्ण के विहार के लिए आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व प्रकट किया था, जो कि पूर्णतया विलुप्त हो चुका था। पूज्य श्रीबाबामहाराज ने ही शास्त्रों के आधार पर इसको पुनः प्रकट किया। इंजीनियरों के अनुसार यह लगभग ८५ लाख रुपये का प्रोजेक्ट था। संत श्रीराजकुमारजी ने इस दुष्कर सेवा-कार्य को तत्परता व लगन के साथ प्रारम्भ कर दिया, सहयोग के लिए आगे आई श्रीमानमंदिर की दिव्य नारीशक्ति (ब्रजाराधिकाएँ) व साधु-संतजन एवं दीदीजी गुरुकुल के विद्यार्थीगण (बालाराधक)। समस्त भक्तजन सेवा-कार्य में तन-मन-वचन से संलग्न हो गये। जो असंभव कार्य था वह संभव हो गया। इतना बड़ा प्रोजेक्ट लगभग २ माह में पूरा हो गया। दिनांक १५ जून २०१५ के दिन एक बड़ा चमत्कार हुआ, पूज्य श्रीबाबामहाराज बोले कि आज देर रात तक कार्य सम्पन्न कर लेना, कल शायद तुम्हें नहीं आना पड़ेगा (जैसे कि पूज्यश्री को पहले से ही आभास हो गया हो) और हुआ भी वही, सभी ने रात्रि पर्यन्त अथक परिश्रम किया और दूसरे दिन संध्या होते ही केवल उसी क्षेत्र में भीषण वर्षा हुई और देखते ही देखते 'देव सरोवर' लबालब भर गया। वर्तमानकाल में ब्रजभूमि का यह दिव्य देवसरोवर युगलसरकार श्रीराधामाधव की प्रेमरसलीलाओं में निमग्न कराने वाला अलौकिक सुशोभनीय स्वरूप धारण किये हुये ऐसा प्रतीत होता है मानो ब्रजोद्धारक संत-महापुरुषों व धामसेवानिष्ठ ब्रजोपासिकाओं की महिमा का गान कर रहा हो।

इसी प्रकार प्रिया कुण्ड (पीरी पोखर) का जीर्णोद्धार हुआ, जहाँ की प्रसिद्ध प्रेममयी लीला है कि श्रीजी ने विवाहोपरान्त हरिद्रायुक्त पीतहस्त यहीं धोये थे। इस कुण्ड से सम्बन्धित अनेक रसमयी लीला-कथायें ब्रजमहिमान्वित ग्रन्थों में मिलती हैं। एकबार श्रीजी मंदिर के गोस्वामीगण श्रीबाबामहाराज के पास आये और बोले - महाराजजी! प्रियाकुण्ड हजारों वर्षो से स्वच्छ नहीं हुआ है, इस दुष्कर कार्य को आप ही करवा सकते हैं। श्रीबाबामहाराज के निर्देशानुसार राजकुमारजी ने समर्पितभावपूर्ण सुदृढ़निष्ठा के साथ प्रियाकुण्ड के स्वच्छता अभियान का शुभारम्भ कर दिया। पुनः सेवाभावपरिपूरित मानमंदिर की अद्वितीय नारी शक्ति, साधु-संत एवं दीदीजी गुरुकुल के समस्त कर्मठ बालक-बालिकायें उत्साहपूर्वक प्रियाजी के कुण्ड की सेवा में जी जान से जुट गए। इस बार भी कठिनाइयाँ कम नहीं थीं। कुण्ड अत्यधिक गहरा था, नीचे से ऊपर तक कीचड़ से भरा हुआ था और बीच-बीच में काँच के टुकड़े पड़े हुए थे। सेवा करते समय शायद ही कोई ऐसा भक्त हो जिसके हाथ-पैर तीक्ष्ण काँच के चुभने से घायल न हुए हों परन्तु कोई कहाँ रुकने वाला था ! सभी को यह दृढ़ विश्वास था कि श्रीबाबामहाराज ने आज तक जो-जो संकल्प लिए हैं वे सम्पूर्ण अवश्य हुए हैं। हुआ भी वही, समय अवश्य अधिक (लगभग तीन माह) लग गया परन्तु कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। प्रियाकुण्ड की नौका-विहारलीला, जो जलाभाव के कारण वर्षो से बंद थी, सफाई के बाद पुनः प्रारम्भ हो गई।

संत श्रीराजकुमारजी महाराज की विशेषता है कि जो भी कार्य हाथ में लेते हैं, उसे पूर्ण अवश्य करते हैं। आपके द्वारा और भी अनेकों सेवाएँ सम्पन्न हो चुकी हैं, जैसे कामां (जिला-भरतपुर) में 'सूर्यकुण्ड' का जीर्णोद्धार, मानमंदिर, गह्वरवन में 'यात्रा-कुंज' का निर्माणकार्य, दीदीजी गुरुकुल के नवीन भवन का निर्माणकार्य आदि। श्रीमानमंदिर के विभिन्न सेवा-कार्यो में भी आपका विशेष योगदान रहता है, जैसे ४० दिवसीय श्रीराधारानी वार्षिक ब्रजयात्रा के तम्बू-तनातों को यात्रा सम्पन्न होने के बाद संभाल कर रखना, मंदिर की जल व्यवस्था देखना, मंदिर के चारों ओर की हरियाली व लता-वृक्षों की देखरेख करना, साधु-संतों के भोजनप्रसाद-सेवा हेतु गाय के गोबर की खाद से हरी-भरी साग-सब्जियों के उत्पादन में सहयोग करना, गहवरवन की सुरक्षा हेतु तार लगाने का कार्य तथा साधु-सेवा, आवश्यकता पड़ने पर ड्राइविंग आदि कई सेवाएँ आप सुचारु रूप से सँभालते हैं। यही कारण है कि श्रीबाबामहाराज आपको 'मानमंदिर का विश्वकर्मा' कहते हैं।

❑❑❑

करुणामयी की करुणा

(ब्रजबालिका साध्वी सुश्री मुरलिका जी शर्मा, मान मंदिर)

श्रीजी में ऐसी करुणा है, ऐसी दया है, ऐसा वात्सल्य है कि उसका कोई पारावार नहीं है। 'श्रीराधासुधानिधि' ग्रन्थ में तो लिखा है कि श्रीजी के नेत्र सदा करुणाश्रुओं से सजल रहते हैं, क्योंकि श्रीजी चिन्तन करती हैं कि ये बेचारे जीव संसार में भटक रहे हैं, दु:खी हैं, नाना प्रकार के तापों से तप्त हैं, ये किसी भी प्रकार से मेरे सन्मुख हो जाएँ, मेरे शरणागत हो जाएँ तो मैं दौड़कर इन्हें अपने गोद में उठा लूँ, इनका प्रगाढ़ आलिंगन कर लूँ। ऐसी करुणामयी हैं राधारानी !! एकबार श्रीजी उदास भाव से बैठी हुई थीं। उसी समय श्रीशुकदेवजी वहाँ गये और विनयपूर्ण वाणी बोले - "हे राधे ! हे स्वामिनी जू !! आप ऐसे उदास क्यों बैठी हुई हैं ?" श्रीजी ने कहा - "मेरे औदास्य का एक ही कारण है संसार के जो बेचारे दु:खी प्राणी हैं, ये मेरे सन्मुख क्यों नहीं हो जाते, यदि ये एक बार भी मेरे सम्मुख हो जाएँ, मुझे याद कर लें, मेरा चिन्तन कर लें तो इनको कभी किसी प्रकार के दु:ख को भोगना नहीं पड़ेगा, कभी दु:ख इनके समीप भी नहीं आ पायेगा।" शुकदेवजी ने कहा - "हे स्वामिनी जू ! संसार के त्रिताप से संतप्त प्राणी अपनी पीड़ा से मुक्त हो जाएँ, क्या इसका कोई उपाय है ?" श्रीजी ने कहा - हाँ, एक उपाय है कि कोई संसार में जाकर युगल सरकार (हम दोनों राधा-माधव) की कथा-सरिता को प्रवाहित कर दे और उस कथा-सरिता में जो भी अवगाहन कर लेगा (उसमें जो भी अभिसिक्त 'अभिसिंचित, स्नात' हो जाएगा अर्थात् भगवत्कथा का श्रवण-मनन-निदिध्यासन कर लेगा) वह सदा-सदा के लिए मुझे प्राप्त हो जाएगा, लेकिन उस कथा-गंगा को कौन प्रवाहित करे ? तो शुकदेवजी ने यह दायित्व स्वयं ले लिया और कहा - "हे स्वामिनी जू ! आप किसी भी प्रकार से शोकातुर न हों, आप चिन्ता न करें, मैं इसी समय भू-लोक में जाऊँगा और वहाँ जाकर आप दोनों युगलसरकार राधामाधव दिव्यदम्पत्ति की दिव्य कथा-सरिता की दिव्य मंदाकिनी को प्रवाहित करूँगा और निश्चित ही समस्त प्राणी उसमें अवगाहन करेंगे, इसमें ऐसा आनन्द होगा कि जो एकबार उस रस का आस्वादन कर लेगा, एक कणिका भी जो चख लेगा, वह इससे बिल्कुल बाहर नहीं आना चाहेगा।"

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टा: ।

(भागवत१०/४७/१८)

एकबार कोई इसमें प्रवेश कर ले तो यह कथा-मंदाकिनी ऐसी है कि कभी बाहर निकलने नहीं देगी, इच्छा ही नहीं होगी कि इससे बाहर आयें। लेकिन प्राय: लोग ऐसा भी कह देते हैं कि क्या सुनें, वही कथा है, हम तो सुन-सुन कर अघा गए। भगवत्कथा से जिनकी अरुचि हो गई, समझ लो उसने कथा को न सुना, न समझा।

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ५३)

जो भगवान् के लीलारस-चरित्रों से अघा गये, तृप्त हो गये, समझ लो वे उस रस को प्राप्त नहीं कर पाये, उस रस को समझ नहीं पाये, इस कथा को सुनने के उपरान्त सदैव एक ही इच्छा हो कि अब यह कथा और कब सुनने को मिले ? तो ही उस दिव्य रस की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा असम्भव है। श्रीशुकदेवजी महाराज ने श्रीजी की कृपा-करुणा, आज्ञा-निर्देशन से इस धरा-धाम पर आकर भागवत-कथा का गान किया है। बहुत दिव्य कथाएँ प्राप्त होती हैं श्रीशुकदेवजी के अवतार के विषय में। हमारे पूज्य श्रीबाबामहाराज बताते हैं कि 'आनन्दवृन्दावनचम्पू' गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के आचार्यों का एक बहुत सुंदर ग्रन्थ है, उसमें शुकदेव प्रभु के अवतारकाल की बहुत दिव्य चर्चा है, उसमें वर्णन मिलता है कि शुकदेवजी राधारानी के पालित शुक (तोता) हैं।

गाढानुरागभरनिर्भरभङ्गुराया: कृष्णेति नाम मधुरं मृदुपाठयन्त्या:।
धिङ् मामधन्यमतिचञ्चल जातिदोषाद् देव्या: कराम्बुरुह कोरकतश्च्युतोऽस्मि॥

(पूर्वानुराग, अष्टम: स्तवक: - ४४)

एकबार कृष्णप्रेमाकुल श्रीराधारानी अपने लालित-पालित तोता (शुकदेव जी) को अपने हाथ में बैठाकर कह रहीं थीं - "अरे शुक ! कृष्ण बोल !! कृष्ण बोल !!!" तो वह तोता भी कृष्ण-कृष्ण रटता था और जब वह शुक कृष्णनामोच्चारण करता तो श्रीराधारानी एकदम प्रेम में अभिभूत (सराबोर) हो जाया करती थीं, तब वह तोता सोचता कि जब 'कृष्ण-नाम' में ही इतनी मिठास (मधुरता) है तो उन कृष्ण में कैसी मधुरता होगी? उनका दर्शन करना चाहिए, ऐसा विचार मन में आया तो वह तोता श्रीजी के हाथ से उड़ गया और नंदगाँव में जाकर एक वृक्ष पर बैठकर कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण रटने लगा, अब जैसे ही 'कृष्ण नाम' रटा तो ठाकुरजी आये, ठाकुरजी का दर्शन किया उस शुक ने लेकिन सोचने लगा कि जो मधुरता (मिठास) श्रीजी के कर-कमल में बैठने पर मुझे मिलती थी, जब श्रीजी मुझे कृष्ण नाम पढ़ाया करती थीं, उसमें जो मधुरता थी, वह तो कृष्ण में भी नहीं है।

अनन्य नृपति स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज ने एक पद में कहा -

"बड़े भए हौ बिहारी याहि छाँहिं ते।"

जब से श्रीजी ने आपको बरसाने में निवास दिया, आपसे सम्बन्ध स्वीकार किया, तब से ही आपमें ये सब गुण आये हैं, नहीं तो आपमें कोई गुण नहीं हैं।

श्रीजी (श्रीराधारानी) के कारण उस शुक को जो मधुरता प्राप्त हो रही थी, वह उसे ठाकुरजी के पास भी नहीं मिली तो वह शुक अपने-आपको धिक्कारने लगा - **'धिङ्मामधन्यमतिचञ्चल जातिदोषाद्'** मुझे धिक्कार है, मैं अधन्य हूँ। मेरी जाति ही बुरी है, (क्योंकि पक्षी जाति में चंचलता बहुत होती है, पक्षी कभी यहाँ एक डाल पर बैठा तो दूसरे क्षण दूसरे डाल पर चला जाएगा, पक्षी के अन्दर चापल्य का होना सहज (स्वाभाविक) है।) **'देव्याः कराम्बुरुह कोरकतश्च्युतोऽस्मि'** अरे ! मुझे धिक्कार है, मैं श्रीजी के कर-सम्पुट (कर-कोरक) से उड़ कर आ गया, लेकिन मुझे यहाँ वह रस-प्राप्ति नहीं हो रही है, जो रस मुझे श्रीराधारानी के पास मिल रहा था।

अतः शुकदेवजी राधारानी के पालित शुक (तोता) हैं, ऐसा भी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त एक ग्रन्थ है रुद्रयामल, इस ग्रन्थ में बहुत दिव्य बात लिखी है, इसमें ये दर्शाया गया है कि शुकदेवजी साक्षात् श्रीठाकुरजी हैं। इसमें कहा है -

गाढानुराग क्रीडा शुको श्रीवृषभानुजाया पवित्र चञ्चु प्रिय चुम्बनेन।
एकान्त कोऽनन्य रहस्य पाठी, निकुञ्ज प्रासाद सदा निवासी॥

नित्य गोलोक जहाँ दिव्य दम्पत्ति श्रीराधामाधव युगल सरकार विराजमान रहते हैं, जहाँ श्रीजी-ठाकुरजी की एकान्तिक निभृत निकुँज की लीलाएँ सम्पन्न होती हैं। वहाँ एकबार श्रीजी-ठाकुरजी दोनों लीला विहार कर रहे थे, उस लीला-विहार में केवल गोपियों का प्रवेश है और किसी का भी प्रवेश नहीं है। वहाँ ठाकुरजी के मन में इच्छा हुई कि हम युगल सरकार में जो रस है, जिसका आस्वादन ये समस्त गोपाङ्गनायें कर रही हैं, सब ब्रजगोपियाँ कर रहीं हैं तो एक बार मैं भी तो यह रस आस्वादन करके देखूँ। अब देखो, ठाकुरजी के मन में ही अपने और श्रीजी के सम्मिश्रित लीला-रस के आस्वादन करने की इच्छा हुई तो ठाकुरजी ने उसी समय शुक रूप ग्रहण कर लिया, अब शुक रूप बनकर ठाकुरजी उसी निभृत-निकुँज में चले गये, जहाँ केवल राधारानी बैठी हुई थीं। वहाँ श्रीजी ठाकुरजी की प्रतीक्षा कर रहीं थीं कि अब ठाकुरजी आयेंगे तो लीला सम्पन्न होगी, बहुत देर हो गई, राधारानी के नेत्रों से प्रतीक्षा के कारण झर-झर अश्रु बह रहे थे 'अभी श्रीकृष्ण नहीं आये, अभी श्रीकृष्ण नहीं आये।' उसी समय ठाकुरजी शुक रूप से वहाँ चले गये और श्रीराधारानी के सम्मुख बैठकर 'कृष्ण - श्रीकृष्ण -कृष्ण-श्री कृष्ण' नामोच्चारण करने लगे। अब जैसे ही कृष्ण नाम सुना तो एकदम श्रीजी ने दृष्टिपात किया कि अरे ! ये शुक कितना मधुर नाम ले रहा है, कैसी मिठास है इसकी वाणी में। तो श्रीजी गई उस शुक के पास और सबसे पहले शुक को श्रीजी ने अपनी दाहिनी हथेली पर बिठाया और उस हथेली पर बैठकर वह शुक 'कृष्ण-कृष्ण' रटने लगा। शुकदेवजी बैठे हैं राधारानी के कर-कोरव (कर-सम्पुट) पर, तो यह व्यासासन हो गया। अब वहाँ बैठकर शुकदेव महाप्रभु 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करने लगे, अब जैसे ही 'कृष्ण नाम' लें तो श्रीजी क्या करतीं ? **"पवित्र चञ्चु प्रिय चुम्बनेन"** इतना मधुर नाम शुक लेता! इतना मधुरमय नाम !! कि श्रीजी से रहा नहीं जाता, अपनी बायीं हथेली को अपने मुख से चूमतीं और फिर ले जाकर उस कर को उस शुक के मुख पर लगा देतीं और बार-बार उस शुक की चंचु को चूम लेतीं। तो सोचो शुकदेव महाप्रभु के जिस चंचु से इस श्रीमद्भागवत का प्राकट्य हुआ, उस चंचु का चुम्बन स्वयं श्रीराधारानी ने किया तो शुकदेवजी के अन्दर उसी समय श्रीराधारानी ने अपना सर्वस्व अधरामृत प्रदान कर दिया। अब सोचो, उन शुकदेव महाप्रभु के मुख से निःसृत इस श्रीमद्भागवत महामहिमाशाली ग्रन्थ की क्या महिमा होगी!! अनिर्वचनीय है !!! परीक्षितजी महाराज ने शुकदेवजी महाराज से ही कथा का श्रवण किया क्योंकि जब शुकदेवजी कथा सुनायेंगे तो आगे भविष्य में इस कथा का बड़ा सुन्दर प्रचलन होगा, बहुत लोग कथा कहेंगे, बहुत-से लोग इसका श्रवण करेंगे। कथा के कथन-श्रवण के पूर्व एक बहुत महत्त्वपूर्ण शर्त रख दी गई

कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः।
यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्धते॥
उभयोर्वैपरीत्ये तु रसाभासे फलच्युतिः।
किन्तु कृष्णार्थिनां सिद्धिर्विलम्बेनापि जायते॥

(स्कन्दपुराणोक्त भागवतमाहात्म्य - ४/३९, ४०)

वक्ता और श्रोता को कृष्णार्थी होकर के कथा कहनी और सुननी चाहिए, धनार्थी होकर नहीं। यदि हमारे मन में रंचमात्र भी धन अथवा संसार की अन्य कोई भी वैषैयिक वस्तुओं की इच्छा है तो हमें कथा कहने और सुनने का जो यथार्थ लाभ है, वह कभी नहीं मिलेगा। वक्ता यदि धनार्थी है, मन में ये सोचे कि कथा तो एक व्यापार (सौदा) है, खूब चढ़ावा (द्रव्य, दान-दक्षिणा आदि) आ रहा है, उसको समेट लें, बस यही कथा का फल मिल गया। अरे ! नहीं, यदि यह लक्ष्य लेकर कथा की तो तुम्हें कथा-कथन का भी सम्यक लाभ नहीं मिलेगा। इसलिए वक्ता भी कृष्णार्थी हो और श्रोता भी कृष्णार्थी हो, तब जाकर कथा के कथन-श्रवण का दोनों को यथार्थ 'भक्ति-लाभ' होगा, अन्यथा यदि धन आदि में लुढ़क गये तो फिर भले ही बार-बार कथा सुनो तो भी लाभ नहीं मिलेगा। अतः जब श्रीठाकुरजी की प्राप्ति का सुदृढ़ लक्ष्य लेकर कथा सुनी जाएगी कि इस जन्म में, इसी जीवन में, इसी शरीर से और इसी कथा के माध्यम से हम श्रीठाकुरजी को प्राप्त कर लेंगे तो ही उसका सम्यक लाभ 'प्रेममयी भक्ति' की प्राप्ति होगी।

❑❑❑

विश्व की सुख शान्ति एवं समृद्धि का स्रोत - "ब्रज संस्कृति का संरक्षण"

अन्तर्राष्ट्रीय कथा व्यास डॉ. श्री रामजीलाल शास्त्री
(मान मन्दिर, बरसाना)

भगवान् हैं - इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है यह दृश्यमान जगत। **"विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे"** (भागवतमाहात्म्य, पद्मपुराण १/१) समग्र विश्व की उत्पत्ति, पालन-पोषण व संहार उसी की इच्छा से होता है, कोई मनुष्य नहीं कर सकता। सम्पूर्ण विश्व को यदि विराट भगवान् का शरीर माना जाये तो भारत उसका हृदय है और ब्रज है उसका प्राण। प्राण के अभाव में शरीर का कोई अस्तित्त्व नहीं रहता। ब्रज एवं ब्रज-संस्कृति की रक्षा से ही सारे विश्व में सुख-शांति, समृद्धि, एकता एवं पारस्परिक प्रेम की प्राप्ति संभव हो सकेगी। ब्रज-संस्कृति क्या है ? एक शब्द में यदि इसका उत्तर पूछा जाये तो वह है - निष्काम प्रेम। जिसके आधीन होकर सर्वशक्तिमान ब्रह्म श्रीकृष्ण ब्रजगोपियों का ऋणियां बन जाता है। जिसकी भौंह के इशारे पर सारा जगत नाचता है। ब्रजगोपियों के आगे वह सर्वेश्वर कठपुतली की तरह नाचता है। जो काल का भी काल है, बड़े-बड़े असुरों का संहार करने वाला है, वह ग्वालबालों से खेल में पिट जाता है, हार जाता है। इस दिव्य निष्काम प्रेम की प्राप्ति कैसे सम्भव है? इसकी प्राप्ति का एक ही उपाय है, वह है - भाव से ब्रज की सेवा। ब्रज की सेवा से तात्पर्य है - वहाँ की धरोहर 'देव तुल्य पर्वतों का संरक्षण' जिन्हें डायनामाइट से उड़ाया जा रहा है, ब्रज में कटते हुए वृक्षों को रोका जाये, नये-नये पेड़ लगाये जायें। 'ब्रज के कुण्ड-सरोवर' जो प्रायः नष्ट हो चुके हैं, कुछ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़े हैं, उनका जीर्णोद्धार किया जाये। 'गोवंश' जिसकी बेरहमी के साथ हत्या कर दी जाती है, उनकी रक्षा के लिए गौशालायें खोली जायें व उनके लिए रहने-सहने, खाने-पीने का प्रबन्ध किया जाये।

ब्रज की पहचान है - श्रीयमुनाजी। यमुनाजी नहीं तो ब्रज नहीं। आज यमुनाजी की बड़ी दयनीय स्थिति है। यमुनोत्री से यमुना हरियाणा में हथिनीकुण्ड तक कल-कल निनाद करती अपनी उत्ताल तरंगों के साथ किलोल करती आती हैं, परन्तु दुर्भाग्य से उन्हें हथिनीकुण्ड पर कैद कर लिया गया है। हथिनीकुण्ड से दिल्ली होती हुई यमुना ब्रज में आती हैं। हथिनीकुण्ड से दिल्ली की दूरी लगभग १४० कि.मी. है। इस बीच में यमुना जल बिल्कुल नहीं है, सूखी पड़ी हैं। परन्तु दिल्ली से एक दूसरी यमुनाजी शुरू हो जाती हैं, कैसे ? दिल्ली के करोड़ों लोगों का जो मलमूत्र है, वही यमुनाजी के रूप में प्रवाहित हो रहा है। करोड़ों लोग आस्था से उसी को यमुनाजी समझ कर आचमन लेते हैं एवं अपने घर-मन्दिरों में श्रीठाकुरजी (श्रीभगवान्) को नहलाते हैं। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। यमुना मुक्तिकरण एवं शुद्धिकरण हेतु 'मानमंदिर सेवा संस्थान के संरक्षण' में मार्च २०११ में इलाहाबाद से दिल्ली तक पैदल यात्रा चली, जिसमें हजारों भक्त शामिल थे। पुनः मार्च २०१३ में आन्दोलन हुआ। वृन्दावन से दिल्ली तक लाखों लोग सम्मिलित हुए, सरकार ने शीघ्र कार्यवाही करने का लिखित आश्वासन दिया परन्तु कुछ नहीं किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सरकार ही चली गयी। मार्च २०१५ में पुनः आन्दोलन हुआ, जिसमें लाखों लोग सम्मिलित हुए थे। दिल्ली में जन्तर मन्तर पर माननीय मंत्री श्रीरविशंकरजी ने भाषण दिया था कि मैं आपको आश्वासन देने नहीं बल्कि यह बताने आया हूँ कि माननीय प्रधानमन्त्री मोदीजी व राजनाथसिंहजी ने आपकी माँगें मान ली हैं और शीघ्र ही कार्य शुरू होगा। उनके इस वक्तव्य से आन्दोलन स्थगित कराया गया परन्तु दुःखद बात है कि अभी तक कोई कार्यवाही नहीं हुई है। हम भारतवासियों की यमुना-मुक्तिकरण की माँग भारत सरकार स्वीकार कर संतोषजनक कार्यवाही करती है तो यह सच्चे रूप में ब्रज की सेवा होगी, जिससे ब्रजराज श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होंगे। उनकी प्रसन्नता से ही ब्रज का सर्वांगीण विकास सम्भव होगा।

ब्रज, ब्रज की संस्कृति, ब्रज की धरोहर - कुण्ड-सरोवर, यमुना, पर्वत, वृक्ष आदि ये सब नष्ट हो रहे हैं, इनकी चिंता नहीं है लोगों को। परम विरक्त संत पूज्य श्रीरमेशबाबामहाराज, जो पिछले ६२ वर्षों से श्रीमानमंदिर गहवरवन, बरसाना में रह रहे हैं, ब्रज के

बाहर नहीं जाते हैं, उनके मन में ब्रज को बचाने का शुभ संकल्प उदय हुआ, देवतुल्य पर्वत जिन्हें डायनामाइट से उड़ाया जा रहा था, लम्बी लड़ाई के बाद माननीय उच्च न्यायालय राजस्थान व उत्तरप्रदेश के माध्यम से खनन पर रोक लगी, लाखों की संख्या में वृक्षारोपण किया गया, कुण्ड-सरोवरों का जीर्णोद्धार किया गया एवं बाबाश्री की ही प्रेरणा से श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट की स्थापना हुई, जिसके द्वारा अनेकों रचनात्मक कार्य हो रहे हैं। इस संस्थान के अंतर्गत मानपुर, बरसाना में एक 'श्रीमाताजी गौशाला' की स्थापना की गयी है, जिसमें आज लगभग ४० हजार से अधिक गायें देशी नस्ल की हैं, जिनकी मातृवत् सेवा हो रही है। इस गौशाला में प्राय: वे गायें हैं जिनको कत्लखाने में कत्ल होने से बचाया गया है। पूज्य श्री महाराजजी का विश्वास है कि किसी की प्रेरणा से अथवा प्रयत्न से यदि कोई भी व्यक्ति भगवान् के प्रति आस्थावान हो जाये, उसके जीवन में आराधना आ जाये तो यह मानव-जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। श्रीमद्भागवत में लिखा है -

सर्वेवेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ। जीवाभय प्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि॥

(भागवत ३/७/४१)

इस उदेश्य की पूर्ति के लिए आज मान मंदिर सेवा संस्थान के माध्यम से लगभग ३५ हजार गाँवों में प्रभात फेरियाँ चल रही हैं। लोग ढोलक, झांझ और मंजीरे के साथ कीर्तन करते हुये अपने गाँव, नगर और मोहल्ले में परिक्रमा करते हैं। पूज्य श्रीबाबामहाराजजी के संरक्षण मे श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा प्रति वर्ष ब्रज चौरासी कोस की चालीस दिवसीय यात्रा अक्टूबर मास में शरद पूर्णिमा से दो दिन पहले प्रारम्भ होती है, जिसमें १४ से १५ हजार यात्री रहते हैं। यह यात्रा सबके लिए पूर्णत: नि:शुल्क है। खाना-पीना, टेंट की व्यवस्था, सामान ढोने की व्यवस्था और दवा की व्यवस्था आदि सब कुछ नि:शुल्क है। भारत के विभिन्न प्रान्तों से, देश-विदेश के भी भक्त लोग इस यात्रा में आकर सम्मिलित होते हैं। चौबीस घंटे यात्रा में भगवन्नाम-संकीर्तन होता रहता है। पूज्य श्रीबाबामहाराज का विश्वास है कि भगवन्नाम-संकीर्तन से लौकिक-पारलौकिक सब प्रकार की कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है यह चौरासी कोस की ब्रजयात्रा और माताजी गौशाला। गौशाला में भी हर समय कीर्तन चलता रहता है।

पूज्य महाराजजी का स्पष्ट निर्देश है कि चौरासी कोस की यात्रा में कोई भी यात्री कभी भी आये अथवा श्रीमाताजी गौशाला में कभी भी कितनी भी गायें आ जाएँ, तो भी किसी को वापिस न किया जाये। लक्ष्य पवित्र रहेगा तो पोषण की सामर्थ्य प्रभु स्वयं प्रदान करेंगे। ब्रज चौरासी कोस की यात्रा में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए खर्च होते हैं। 'माताजी गौशाला' में भी गायों की सेवा में लगभग २० लाख रुपये प्रतिदिन का खर्च है परन्तु कभी भी कहीं भी चन्दा की माँग नहीं की जाती है। दैव इच्छा से जो कुछ प्राप्त होता है, सेवा में स्वीकारा जाता है। मानमंदिर सेवा संस्थान के सभी लौकिक या आध्यात्मिक कार्य नि:शुल्क होते हैं। भगवन्नाम प्रचार हो या श्रीमद्भागवतकथा सभी लोग नि:स्पृह भाव से सेवा करते हैं। भारत में या अन्य किसी देश में श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान से जो भी टीम जाती है, निष्काम भाव से सेवा करती है। कहीं भी पैसे की कोई ठहरावन या पूर्व माँग नहीं होती। श्रीजी शर्मा, साध्वी श्री किशोरी देवी, संत श्री नृसिंहदास एवं संत श्री गिरधरजी इन चारों की एक टीम मई व जून में फिजी गई थी। दूसरी टीम में मुरलिकाजी शर्मा, डा.श्री रामजीलालजी शास्त्री एवं श्री राधिकेशजी महाराज, इन तीनों की टीम वर्तमान में अमेरिका एवं कनाडा गई हुई है। इनकी निष्कामता व सादगी का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। कितने ही लोगों ने अपना मन ब्रज आने को बना लिया है और अपनी टिकट भी बुक करवा ली है। पूज्य महाराजजी कहते हैं कि धर्म को व्यापार नहीं बनाना चाहिये। जिस धर्म पालन में जितनी निष्कामता होगी, वह उतना ही सशक्त होगा।

यदि आप मानमंदिर के रचनात्मक कार्यों को देखना चाहें तो- www.maanmandir.org से देख सकते हैं। इस वेबसाइट से आप नित्य प्रात: ८:३० बजे से ९:३० बजे तक एवं सायं ६:३० से ७:३० बजे तक पूज्य महाराज जी के सत्संग का सीधा प्रसारण देख सकते हैं। यदि आपके पास स्मार्ट फोन है तो maan mandir app से नित्य का सत्संग download भी कर सकते हैं । इसी वेबसाइट में maan mandir.org के आगे murlika ji live. Type (टाइप) करने से U.K., U.S.A.(अमेरिका) एवं कनाडा के उनके सारे भाषण आप youtube से देख सकते हैं।

❑❑❑

भक्त प्रवर प्रह्लादजी महाराज का उपदेश

व्यासाचार्य पं. श्रीमहेशचन्द्रजी शास्त्री, मान मन्दिर गहवर वन, बरसाना।

जो अभी कर सकते हैं उसके लिए भविष्य की आशा करना, जो स्वयं कर सकते हैं उसके लिए पर-अपेक्षा रखना तथा जो भगवत्प्राप्ति स्वत: एवं स्वाभाविक है, उसे कठिन मानना ये तीनों मानसिक प्रमाद एवं मृत्युरूप हैं, इन्हें अविलम्ब त्याग देना चाहिए। जिस किसी उपाय से भगवान् से निष्काम प्रेम हो जाए, वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। यह बात स्वयं श्रीप्रह्लादजी ने कही है

गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ।
सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च॥
श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभि: ॥

(श्रीमद्भागवत ७/७/३०,३१)

गुरु की प्रेमपूर्वक सेवा, अपने को जो कुछ मिले उसे भगवदार्पित कर देना, भगवत्प्रेमी महात्माओं का सत्संग, प्रभु की आराधना, उनकी कथावार्ता में श्रद्धा, उनके गुण और लीलाओं का कीर्तन, उनके चरणकमलों का ध्यान और मंदिरमूर्ति, लीलाभूमि 'ब्रजभूमि' का दर्शन-पूजन आदि साधनों से भगवान् में स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। सर्वसमर्थ भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियों में विराजमान हैं, ऐसी भावना से यथाशक्ति सभी प्राणियों की सेवा करे और हृदय से उनका सम्मान करे।

काम, क्रोधादि छ: शत्रुओ पर विजय प्राप्त करके जो लोग इस प्रकार भक्तिमय आराधन करते हैं, उन्हें शीघ्र श्रीकृष्णचरणों में अनन्य प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

प्रह्लादजी बोले - असुर कुमारो ! अपने हृदय में ही आकाश के समान नित्य विराजमान भगवान् का भजन करने में कौन-सा विशेष परिश्रम है। वे समान रूप से सभी प्राणियों के अतिशय प्रेमी मित्र हैं। उनको छोड़कर भोग सामग्री एकत्र करना कितनी मूर्खता है!!

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सत: ।
स्वस्यात्मन: सख्युरशेषदेहिनां सामान्यत: किं विषयोपपादनै: ॥
राय: कलत्रं पशव: सुतादयो गृहा मही कुञ्जरकोशभूतय: ।
सर्वेऽर्थकामा: क्षणभङ्गुरायुष: कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चला: ॥

(श्रीमद्भागवत ७/७/३८,३९)

अरे भाई ! धन, स्त्री, पशु, पुत्र-पुत्री, महल, पृथ्वी, हाथी, खजाना और भाँति-भाँति की विभूतियाँ और तो क्या संसार का सम्पूर्ण धन तथा भोग-सामग्रियाँ इस क्षणभंगुर जीवन को क्या सुख दे सकते हैं। वे स्वयं क्षणभंगुर हैं।

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजा: ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता॥

(श्रीमद्भागवत ७/७/५१)

असुर बालको ! भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण, देवता या ऋषि होना, सदाचार और विविध ज्ञानों से संपन्न होना तथा दान, तप, यज्ञ, शारीरिक व मानसिक पवित्रता और बड़े-बड़े व्रतों का अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है, भगवान् तो केवल निष्काम प्रेम से प्रसन्न होते हैं और सब तो विडम्बना मात्र हैं। इसलिए हे बंधुओ ! समस्त जीवों को आत्मवत समझकर सर्वत्र विराजमान सर्वात्मा श्रीहरि की भक्ति करो।

मन्ये धनाभिजनरूपतप:श्रुतौज:तेज:प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगा: ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय॥

(श्रीमद्भागवत ७/९/९)

धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग ये सभी गुण श्रीहरि को संतुष्ट करने में समर्थ नहीं हैं, परन्तु भक्ति से तो भगवान् गजेन्द्र पर भी संतुष्ट हो गए थे।

इसलिए साधकों को सावधानीपूर्वक कृष्णाराधना करना चाहिए।

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई । भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - २००)

सच्चिदानन्द घन परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र प्रत्यक्ष विद्यमान हैं, परन्तु इस प्रकार प्रत्यक्ष होते हुए भी हमारे न मानने के कारण वे अप्राप्त हैं। 'उनका कहीं किसी काल में

भी अभाव नहीं हैं' इस प्रकार न मानना ही अज्ञान है और इस अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न ही पुरुषार्थ है।

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥

(श्रीमद्भागवत ३/२९/२१)

भगवान् कपिल ने अपनी माँ देवहूति से कहा कि हे माता ! मैं सभी प्राणियों में आत्मा के रूप में अवस्थित हूँ, उन प्राणियों की 'अवज्ञा, अनादर, उपेक्षा, द्वेष करना' मेरी ही अवज्ञा, अनादर, उपेक्षा और द्वेष है।

इसलिए समत्वयोग से सभी प्राणियों में भगवद्भाव रखकर सभी से प्रेम करना ही भक्ति है किन्तु हमें कुसङ्गवश या राग–द्वेष युक्त चित्त से भेद दिखाई देता है और वह भेदबुद्धि जब तक रहेगी, मैं–मेरापन रहेगा, तब तक सर्वत्र भगवद्भाव होना असंभव है। इसके लिए भगवद्भावभावित तत्वज्ञ विशुद्धप्रेमी महज्जनों का आश्रय परमावश्यक है। भागवतजी में कथा आती है कि स्वतंत्र साधन करने से भरतजी की हिरन में आसक्ति हुई और दो जन्मों का अन्तराल हो गया भगवत्प्राप्ति में। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि महद्–आश्रय नहीं था। आसक्ति या सङ्ग अवश्य ही आत्मा को फँसाने वाली अक्षय फाँसी है, परन्तु वही आसक्ति यदि संतोंजनों में हो जाए तो मोक्ष का खुला दरवाजा है।

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
स एव साधुषु तो मोक्षद्वारमपावृतम्॥

(श्रीमद्भागवत ३/२५/२०)

हित तौ कीजै कमलनयन सौं जा हित के आगैं और हित लागै सब फीकौ।
कै हित कीजै साधु संगति सौं ज्यौं कलमष जाइ सब जी कौ॥

(स्वामी हरिदासजी कृत केलिमाल)

वीतराग विषयं वा चित्तं। (पातंजलि योगसूत्र)

(१) परमात्मा व संतों की सामर्थ्यशक्ति का यथार्थ लाभ सर्वात्मभाव की शरणागति में ही होता है।

(२) मान रखोगे तो प्रेम नहीं मिलेगा। प्रभु को अमानी दास ही प्रिय है।

गरब गोविन्दहिं भावत नाहीं।

(सूर–विनयपत्रिका – २८२)

(३) रागी को सांसारिक विषय भोगों में जितना सुख प्रतीत होता है, उससे कहीं अधिक आनंद विरक्त साधक को वैराग्य में होता है।

(४) जिस किसी ने भी जगत का भरोसा छोड़कर सर्वात्मसुहृद जगदीश्वर की सर्वात्मभाव से शरण ग्रहण की, उसी के मस्तक पर शरणागतवत्सल का अभय हस्त स्थापित हो गया, फिर वह भगवदाश्रयी जीव सदा के लिए निश्चिन्त हो गया (भक्तवत्सल भगवान् की गोद में पहुँचकर परमधन्य हो गया)।

(५) निष्काम कर्म ही सर्वोत्तम त्याग अथवा पूजन है।

(६) ज्यों ही हम संसार के सुधारक बनने के लिए खड़े होते हैं, त्यों ही हम उसे बिगाड़ने वाले बन जाते हैं, अतः अपने सुधार में ही सबका सुधार संभव है।

(७) जीव के सच्चे सुहृद संतजन व श्रीकृष्ण हैं।

(८) जिसको तुम अपना मानोगे, वहीं पर तुम्हारी शरणागति हो जाएगी, इसलिए सावधान ! श्रीभगवान् के अतिरिक्त अपना कोई नहीं है।

(९) ममता, आसक्ति के कारण पापों का संक्रमण होता है।

कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्तिमानो महद् यशः।

(दानधर्मपर्व, महाभारत)

(१०) गुरुजनों की सेवा सम्पूर्ण पापों का नाश कर देती है, अभिमान महान यश को नष्ट कर देता है।

जब ध्रुव वन को चले

- १३ वर्षीय ओम प्रकाश, दीदी जी गुरूकुल छात्र

भक्तों के जीवन में कौन-सी घटना उनके जीवन-निर्माण में सहायिका हो जाती है, ज्ञात नहीं होता और वह घटना उनके सम्पूर्ण जीवन को बदल कर रख देती है। बहुधा तो भक्तों के जीवन में जो क्लेश आया करते हैं, वे भी भगवत्प्राप्ति का साधन बन जाते हैं। जैसे - श्रीतुलसीदासजी को अपनी पत्नी की फटकार से ही वैराग्य हो गया, श्रीबिल्वमंगलजी को उनकी प्रेमिका के कटुवचनों ने ही भगवत्पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया। इसी प्रकार से बालक ध्रुव की विमाता उनके जीवनोत्थान में बहुत बड़ी सहायिका सिद्ध हुई। मनुपुत्र राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं - 'सुनीति और सुरुचि।' सुनीति से ध्रुव एवं सुरुचि से उत्तम नामक पुत्र उत्पन्न हुए। राजा हमेशा सुनीति से अधिक सुरुचि पर उसकी सुन्दरता के कारण मोहित रहते थे और उसी के पुत्र से ज्यादा स्नेह करते थे। एकबार पाँच वर्ष के छोटे-से बालक ध्रुव "पिताजी-पिताजी" कहते हुए गोद में बैठने के लिए दौड़ते हुए सभा के बीच में आये और जैसे ही पिता की गोद में बैठना चाहा, वैसे ही उनकी सौतेली माँ सुरुचि ने उन्हें उठाकर नीचे पटक दिया और कहने लगी - "अरे ! तू दासी जैसी स्त्री का पुत्र होकर मेरे पुत्र के स्थान पर बैठना चाहता है, यह केवल मेरे बेटे का स्थान है और इस पर उसी का अधिकार है, तेरा नहीं क्योंकि तूने मेरे गर्भ से जन्म नहीं लिया है, तू यहाँ से जा और भगवान् की आराधना कर तब मेरे गर्भ से जन्म लेकर इस सिंहासन का अधिकारी बनना।" सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र राजा के पुत्र का ऐसा अपमान, ऊपर से द्वेष भरे कटुवचन, यह देखकर ध्रुव जी से रहा न गया और क्रोध के कारण लम्बी-लम्बी श्वाँस लेते हुए रोते-रोते अपनी माँ के पास पहुँचे। माँ ने पूछा - "क्यों रो रहा है ?" ध्रुवजी ने सब बात बताई और यह सुनकर सुनीति माँ दु:खी हो गयी और लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए बोली -

मामङ्गलं तात परेषु मंस्था भुङ्क्ते जनो यत्परदु:खदस्तत्॥

(भागवत ४/८/१७)

"बेटा ध्रुव ! तुम किसी का भी अमंगल मत सोचना क्योंकि अमंगल सोचने वाले को उसका दुष्परिणाम पहले ही मिल जाता है। इसलिए तुम्हारी सौतेली माँ ने तुम्हारे साथ जो कुछ भी किया है, उसका बुरा न मानना। यदि तुम मेरे पुत्र हो तो वन में जाओ और एकमात्र उन्हीं भगवान् के चरणों का आश्रय लो, जिन्हें मुमुक्षुजन ढूँढ़ा करते हैं।" माँ की आज्ञानुसार ध्रुव जी वन की ओर चल दिए। वहाँ उन्हें नारद जी मिले। नारद जी ने कहा -

"यस्य यद् दैवविहितं स तेन सुखदु:खयो:।
आत्मानं तोषयन्देही तमस: पारमृच्छति॥

(भागवत ४/८/३३)

देखो, भाग्यवश तुम्हें जो कुछ मिल जाए, उसी में संतुष्ट रहना सीख लोगे तो भगवान् को प्राप्त कर लोगे।

गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात्।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते॥

(भागवत ४/८/३४)

जो तुमसे गुणों में बड़ा है, उससे प्रेम करो और उसे देखकर प्रसन्न हो। जो गुणों में कम है, उसकी उपेक्षा न करके उस पर कृपा करो और जो गुणों में समान है, उससे मैत्री करो, द्वेष न करो। ऐसा करने से कभी तुम्हें ताप नहीं व्यापेगा।" नारद जी की इन बातों को ध्रुव जी ने क्षत्रिय-स्वभाव होने के कारण नहीं माना और तप का मार्ग पूछा तो नारद जी ने बताया -

"तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरे:॥

(भागवत ४/८/४२)

हे ध्रुव ! ब्रज में सुन्दर यमुना तटवर्ती मधुवन में चले जाओ, जहाँ नित्य श्री हरि का सानिध्य है। भविष्य में उस ब्रज में भगवान् अपनी इच्छा से योगमाया का आश्रय लेकर अवतार लेकर अनेकों लीलायें करेंगे। वहाँ जाकर तप करो।" नारदजी की आज्ञानुसार ध्रुवजी ने मधुवन में जाकर तप करते हुए नामाराधना आरम्भ कर दी

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।"

ध्रुवजीके पिता उत्तानपाद की राजधानी गंगा के किनारे स्थित थी, फिर भी यमुना तटवर्ती ब्रज में ही नारदजी ने भगवत्प्राप्ति हेतु आराधन के लिए भेजा क्योंकि ब्रज साक्षात् श्रीभगवान् का धाम (घर) है। किसी को यदि घर में जाकर बुलाओ तो वह तुरंत आ जाता है, उसी प्रकार भगवान् की आराधना उनके घर (ब्रज) में करने से तुरंत वे मिल जाते हैं, यही कारण था कि कोटि-कोटि वर्षों से तपस्यारत महामुनियों को भी दुर्लभ 'भगवान' मात्र ६ महीने में

ध्रुवजी को मिल गए, यह धाम की ही महिमा थी। मधुवन में जाकर ध्रुवजी पहले माह में तीन-तीन दिनों में बेर आदि फल खाते। दूसरे महीने में ६-६ दिनों में सूखे पत्ते आदि खा लिया करते, तीसरे महीने में ९-९ दिनों में जल पीते, चौथे महीने में तो वह सब भी छोड़ दिया और श्वास को जीतकर १२-१२ दिनों में केवल वायु को पीकर भगवान् की आराधना करते रहे, पाँचवे महीने में प्राणों को रोककर अनन्य चित्त से भगवान् का ध्यान करने लगे। चूँकि ध्रुव जी के हृदय में भगवान् थे और भगवान् के हृदय में सम्पूर्ण सृष्टि है तो ध्रुव जी के द्वारा प्राणों के रोकने पर सम्पूर्ण सृष्टि की वायु रुक गयी। इससे संसार के समस्त जीवों और देवताओं को बहुत कष्ट हुआ, व्याकुल होकर समस्त देवताओं ने भगवान् की शरण ली। भगवान् ने देवताओं को आश्वासन दिया और वह भक्तों के दर्शनीय श्रीभगवान् स्वयं अपने भक्त ध्रुव का दर्शन करने की लालसा से मधुवन में आये। भगवान् सामने खड़े हैं परन्तु ध्रुव जी ने नेत्र नहीं खोले क्योंकि ध्रुव जी के मन में भगवान् की छवि स्थित थी तो भगवान् ने उसे उनके हृदय से हटा दिया। जब हृदय से भगवान् की छवि हट गयी तो ध्रुव जी को विकलता हुई और उन्होंने आँखे खोलकर देखा तो सामने वही छवि प्रतिष्ठित थी जिसका अपने अंत:करण में ध्यान कर रहे थे। भगवान् के उस चतुर्भुज रूप को देखकर ध्रुव जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। फिर वह प्रेम के कारण भगवान् को इस प्रकार देखने लगे जैसे उन्हें आँखों के द्वारा पी लेंगे और मुख से चूम लेंगे। उस समय एक छोटे-से बालक ध्रुवजी श्री अनन्त भगवान् की स्तुति करना चाहते थे परन्तु कुछ जानते नहीं थे, पढ़े-लिखे नहीं थे, चुपचाप हाथ जोड़कर खड़े थे। भगवान् भक्त के हृदय की बात जानते हैं अत: उन्होंने अपना वेदमय शंख ध्रुव जी के गालों से स्पर्श कराया, उसके स्पर्श मात्र से ही उन्हें सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, पुराण, शब्दब्रह्म और परब्रह्म का यथावत ज्ञान हो गया। उस समय उन्होंने भगवान् की स्तुति की उसमें एक बहुत सुन्दर बात कही है

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतो:।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य-मिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नणाम् ॥

(भागवत ४/९/९)

ध्रुव जी बोले - "हे प्रभो ! उन लोगों की बुद्धि निश्चय ही आपकी माया द्वारा चुरा ली गयी है, जो आप संसार से मुक्ति देने वाले भगवान् की आराधना अन्य हेतुओं से करते हैं। यद्यपि आप कल्पतरु हैं, आपसे मनुष्य प्रेम, भक्ति आदि जो कुछ भी माँगे, आप दे देते हैं परन्तु वे मोह में मात्र विषय-भोगों की ही कामना करते हैं, जिन्हें प्राप्त करके मनुष्य कुणप (मुर्दा) हो जाता है। ये सब मुर्दो के भोग हैं जो नरक में भी मिल जाते हैं, उन्हीं भोगों की मनुष्य कामना करता है अर्थात उसकी बुद्धि निश्चय ही आपकी माया द्वारा ठग ली गयी है।" स्तुति के उपरान्त भगवान् ध्रुव जी को ध्रुव पद देकर स्वधाम चले गए और ध्रुव जी अपने घर वापस आ गये। वहाँ वे यह सोचते हुए पछताने लगे कि मैं कितना अभागा हूँ जो मैंने नारद जी की बात नहीं मानी और भगवान् से नाशवान वस्तु की ही कामना की क्योंकि देवताओं ने मेरी बुद्धि बिगाड़ दी थी। देवता द्वेषी हैं, इसी कारण उन्होंने मेरी बुद्धि बिगाड़ी कि यह कहीं हमसे भी ऊपर न चला जाए। तदनन्तर उनके पिता उत्तानपाद उन्हें राज्य देकर वन में चले गए और ध्रुव जी धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। इसी बीच उनके भाई उत्तम को यक्षों ने मार डाला और अपने पुत्र की याद में उसकी माँ सुरुचि उत्तम के वियोग में उसे ढूँढ़ते हुए वन में दावानल की लपटों में मृत्यु को प्राप्त हो गई, यह उसे अपने किए का फल मिल गया। अब ध्रुव जी को क्रोध आया, यदि ध्रुव जी नारद जी की बात मानते तो आज उन्हें क्रोध रूपी विकार न व्यापता। क्रोध के कारण आज वे यक्षों पर चढ़ाई कर उनका नाश करने लगे। अपने भाई की हत्या का बदला लेने लगे। ये देखकर उनके दादा जी मनु महाराज पधारे और उनसे कहने लगे कि -

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति॥

(भागवत ४/११/१३)

"हे ध्रुव ! सहनशीलता, करुणा, मैत्री आदि गुणों तथा समस्त प्राणियों के प्रति समता का व्यवहार करने से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं, न कि युद्ध से, इसलिए तुम युद्ध मत करो, द्वेष का त्याग कर दो, इससे भगवान् कभी भी प्रसन्न नहीं होते हैं।" दादा जी की आज्ञा से ध्रुव जी ने युद्ध बंद कर दिया। उसी समय यक्षों के नायक कुबेर जी आये, उन्होंने ध्रुव जी से कहा

भो भो: क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ।
यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यज: ॥ (भागवत ४/१२/२)

अरे क्षत्रिय-पुत्र ! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ। तुम क्षत्रिय हो, क्षत्रिय में दीनता आदि गुण स्वभाव से नहीं होते हैं परन्तु फिर भी तुमने अपने दादा जी की आज्ञा से यह युद्ध बंद कर दिया, दुस्त्यज

बैर छोड़ दिया, इसलिए मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, मांगो, क्या वर मांगते हो? ध्रुव जी ने उनसे भगवान् की अखण्ड स्मृति (भक्ति) मांगी, जिससे कि मनुष्य सरलता से ही भवसागर पार हो जाता है। ध्रुव जी को छः महीने में भगवान् के दर्शन हो गए, फिर भी भक्ति नहीं मिली थी, परिणामतः वह क्रोध के शिकार हुए परन्तु जब द्वेष छोड़ दिया तब भक्ति मिल गई अर्थात् भगवद्दर्शन से भी बड़ी बात है – द्वेष का त्याग, क्योंकि इसे 'दुस्त्यज' कहा गया है, द्वेष का त्याग कठिन ही नहीं अपितु अत्यंत कठिन है। द्वेष छोड़ दोगे तो सहज में ही भक्ति मिल जायेगी। तदनन्तर ध्रुव जी ने छत्तीस हजार वर्ष तक राज्य किया परन्तु कैसे, भोगों से शुभ तथा अभोग से अशुभों को नष्ट करते हुए राज्य किया और जब उनका अंतिम समय आया तो भगवान् के पार्षद उनके लिए वैकुण्ठ से विमान लेकर आये। उसी समय काल भी मूर्तिमान रूप में उनके समक्ष आया और कहने लगा – "प्रभो ! मैं काल हूँ, इस संसार की रीति है कि मुझसे बचकर कोई नहीं जाता परन्तु आप भगवान् के भक्त हैं अतः मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं आपको स्पर्श भी करूँ। इसलिए आप मेरे सिर पर अपना चरण रखकर विमान में विराजिये।" उस समय काल सीढ़ी की तरह बैठा, उस पर ध्रुव जी चरण रखकर विमान पर चढ़े अर्थात् – भगवान् का भक्त काल को भी जीत लेता है। पूज्य बाबाश्री का एक पद है

"जिस गली से दीवाने तेरे चले, उस गली मौत की मौत आने लगी।"

जब ध्रुव जी विमान पर चढ़े, उसी समय उन्हें भजन का मार्ग दिखाने वाली अपनी माँ की याद आई तो उन्होंने पार्षदों से पूछा कि मेरी माँ कहाँ हैं? पार्षदों ने बताया कि देखो, तुम्हारी माँ तुमसे पहले भगवान् के धाम जा रही है अर्थात् भजन करने वाला तो भगवान् के धाम बाद में जाएगा, पहले भजन सिखाने वाला धाम में पहुँच जाता है। जिस घर में भगवान् का भक्त होता है, उसकी कई पीढ़ियों का उद्धार (सन्तरण) हो जाता है। इस प्रकार ध्रुव जी ने भक्ति से सहज में ही योगिदुर्लभ नित्यधाम प्राप्त कर लिया।

❑❑❑

सांवरिया को सुनायेंगी मीरा चरित्र

मान मन्दिर की अल्पायु बालिकाओं द्वारा चित्तौड़ राजस्थान के सांवरिया जी धाम में दिनाँक ०८/०७/२०१७ से १५/०७/२०१७ तक गोपिकावतार मीरा बाई जी का पावन चरित्र श्रवण करायेंगी। ८ वर्षीया बाल साध्वी मधुबनी अपनी सहयोगिनी विरागा एवं दया के साथ ब्रजरस की सरस रस धारा में अवगाहन कराते हुए मीरा जी की पावन धरणी में आठ दिवस प्रवास पर रहेंगी। चूँकि मानमंदिर के पवित्र वातावरण ने इन बालिकाओं को मीरा जी के चरित्र से इतनी छोटी आयु में भगवदानुराग में अभिसिंचित किया है। ये सभी बालिकाएं यहाँ नित्य भगवद्गुणगान करने के साथ गाँव–गाँव प्रचार करती हुयी सर्वत्र भगवत्प्रेम वितरित कर रही हैं।

राधाष्टमी नाट्योत्सव की तैयारीयां शुरू .....

(२)विगत वर्षो की भाँति इस बार भी राधाष्टमी के पावनपर्व पर मान मन्दिर कला अकादमी के सौजन्य से श्री दिलीप मेहरा जी के निर्देशन में मान मंदिर के संत, साध्वियों एवं दीदी जी गुरुकुल के विद्यार्थियों द्वारा अभिनीत, गुजरात के प्रसिद्ध संत श्री नरसी मेहता जी के जीवन चरित्र पर आधारित एक भव्य नाटिका का आयोजन २८ अगस्त २०१७ को बरसाना, गह्वरवन स्थित रस मण्डप हाल में किया जाएगा। भक्तमाल के रचयिता गोस्वामी नाभा जी के अनुसार, भक्त शिरोमणि नरसी जी ने गुजरात की भक्तिहीन भूमि को पवित्र किया। **"जगत विदित नरसी भगत जिन गुज्जर धर पावन करी"** उनकी उत्कट भक्ति से प्रभावित होकर भगवान् श्री कृष्ण ने उन्हें ५२ बार दर्शन दिए। वर्तमान काल में भी जनसाधारण में 'नरसी जी का भात' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन सभी चरित्रों का आगामी नाटिका में प्रस्तुतीकरण किया जाएगा। मान मंदिर के सभी भक्तजन अत्यन्त उत्साह के साथ इस नाटिका की तैयारी में संलग्न हैं।

श्री राधा रानी ब्रज यात्रा

श्री राधा रानी ब्रजयात्रा जो विजयादशमी से दो दिन पश्चात त्रयोदशी से प्रतिवर्ष प्रारम्भ होकर ४० दिन में संपन्न होती है वह इस वर्ष भी ३/१०/२०१७ से प्रारम्भ होगी।

गोपियों की गौ-प्रेम निष्ठा

श्री बाबा महाराज के प्रवचन "गौ-महिमा" (३/६/२०१२)से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी दिव्याजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

समस्त ब्रजगोपिकाएँ इतनी बड़ी गौभक्त थीं कि जिस समय श्रीकृष्ण ने अरिष्टासुर का वध किया तो उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा कि अब हमलोग तुम्हारे हाथ का जल नहीं पियेंगीं। गोविन्द ने पूछा - "ऐसा क्यों ?" गोपीजनों ने कहा - "तुमने अरिष्टासुर को मारा है।" श्रीकृष्ण ने कहा कि वह तो असुर था। गोपिकाएँ बोलीं - "भले ही वह असुर था परन्तु उसका स्वरूप तो बैल का था, वह गौवंश में आता है, इसलिए तुमको गौ-हत्या लग गयी।" सभी गोपियों ने निर्णय कर दिया कि आज से कोई भी गोपाल का स्पर्श मत करना क्योंकि इन्हें गौ-हत्या का पाप लग गया है। यद्यपि श्रीकृष्ण ने बहुत समझाया कि मैंने तो सारे ब्रज की रक्षा की, यदि मैं उसे नहीं मारता तो वह सारे ब्रज का विनाश कर देता लेकिन ब्रजाङ्गनाओं ने उनकी बात नहीं मानी क्योंकि उनमें सच्ची गौनिष्ठा थी। श्रीकृष्ण ने सोचा कि ये ब्रजवासिनी हैं, गौभक्त हैं, इनकी निष्ठा का मुझे सम्मान करना चाहिए, इसलिए वह बोले - "हे ब्रजदेवियो ! मैं कौन-सा धर्माचरण करूँ, जिससे तुम्हारी दृष्टि में इस गौहत्या से मुक्त हो जाऊँ। अपने अनुसार तो मैंने असुर का वध किया है लेकिन तुम्हारे संतोष के लिए मैं क्या करूँ ?" ब्रजाराधिकायें बोलीं - "तुम तीर्थों में जाकर स्नान करो, तभी तुम्हारा गौ-हत्या का पाप नष्ट होगा।" श्रीश्यामसुन्दर बोले कि यदि मैं तीर्थों में जाकर स्नान कर भी आऊँगा, तब भी तुमलोग मुझ पर विश्वास नहीं करोगी और कहोगी कि नन्द का लाला झूठ बोल रहा है, बिना स्नान किए ही बाहर घूमकर लौट आया। अतः मैं पृथ्वी के समस्त तीर्थों को यहीं ब्रज में बुलाता हूँ। तुम्हारे सामने तीनों लोकों के बड़े-बड़े तीर्थ यहाँ आयेंगे और वे गवाही देंगें कि हाँ, श्रीकृष्ण ने हमारे जल में स्नान किया है, तब तुम विश्वास करोगी। ऐसा कहकर श्यामसुंदर ने कृष्णकुण्ड का निर्माण किया, वहाँ उनके आवाहन करने पर प्रत्येक तीर्थ उपस्थित हुआ और नाम लेकर बोला कि मैं प्रयाग हूँ, मैं काशी हूँ, मैं गंगा सागर हूँ। इस प्रकार समस्त तीर्थ अपने साथ कलश लेकर आये और श्रीकृष्ण ने उसमें स्नान किया। स्नान करने के उपरान्त गोविन्द ने गोपाङ्गनाओं से पूछा - "अब तो तुम हमारा स्पर्श करोगी, मुझे अपनाओगी ?" गोपिकाएँ बोली - "हे मनमोहन ! अब तुम शुद्ध हो गए हो।" विनोद भाव में गोपालजी ने कहा - "इतना बड़ा कृष्णकुण्ड मेरे द्वारा निर्मित हो गया, इसमें समस्त संसार स्नान करेगा, अब तुम लोग भी तो कुछ धर्माचरण करके दिखाओ।" ब्रजाङ्गनाएँ बोलीं - "समस्त संसार स्नान करे तो करता रहे परन्तु हमलोग इस कुण्ड में स्नान नहीं करेंगी क्योंकि तुमने इस जल में अपने गौ-हत्या के पाप को छोड़ दिया है। हम तो तुम्हारे कृष्णकुण्ड में अपने चरण भी नहीं रखेंगी।" गोविन्द बोले - "अरे ! मेरे कुण्ड का ऐसा अपमान, तुमसे तो मैं अच्छा ही हूँ, तुम लोगों ने तो एक भी कुण्ड का निर्माण नहीं किया।" उनकी बात सुनकर समस्त सखियों ने राधारानी से कहा - "हे राधे ! तुम भी एक कुण्ड का निर्माण करो अन्यथा नन्दलाला बहुत इतरायेंगे।" सखियों की बात सुनकर श्रीजी ने अपने कंकण द्वारा धरती पर प्रहार किया तो उससे कंकणकुण्ड बना। आज भी राधाकुण्ड के अन्दर छोटा-सा कंकणकुण्ड है। 'कंकणकुण्ड' राधाकुण्ड का मूल है। इसके बाद राधाकुण्ड को कोटि-कोटि ब्रजगोपिकाओं ने मानसीगंगा के जल से भर दिया। इस प्रकार विशाल राधाकुण्ड का निर्माण हो गया। श्यामसुन्दर बोले - "हे राधे ! आपके सामने कृष्णकुण्ड का अपमान हो रहा है क्योंकि ये गोपिकाएँ कह रहीं हैं कि हम इस कुण्ड में स्नान नहीं करेगीं। अतः आप ऐसी दया करो कि दोनों कुण्ड एक हो जाएँ।" श्यामसुंदर की प्रार्थना सुनकर करुणामयी श्रीराधारानी ने स्वपादपल्लव-प्रहार से राधाकुण्ड की आन्तरिक भित्ति को तोड़ दिया, जिससे राधाकुण्ड और कृष्णकुण्ड एक हो गए। श्रीजी बोलीं - 'हे प्यारे श्यामसुन्दर !' अब तुम्हारे कुण्ड का भी सम्मान होगा। मैं समझती हूँ कि तुमने अरिष्टासुर का वध करके अतिसुकृत्य किया, तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य ब्रजरक्षार्थ ही होता है।" इस प्रकार ब्रजवनिताओं की गौ-निष्ठा के कारण ही राधाकुण्ड और कृष्णकुण्ड का निर्माण हुआ।

-क्रमशः

श्रीजी की कान्ति–किरणें ब्रजांगनाएँ

श्रीबाबामहाराज के प्रवचन "गोपी गीत" (२६/०७/१९९७)से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी ब्रजबालाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं सर्वशक्तिमान हो करके भी प्रेम के बंधन में बंधता हूँ क्योंकि प्रेम ही आनंद है। प्रेम भगवान् की स्वरूपशक्ति है। **"प्रेम हरि को रूप है, त्यों हरि प्रेम को रूप। दोउ विलग न होवहीं, ज्यों छाया और धूप॥"** वेदों में आनंदमय ब्रह्म, 'रसो वै सः' रसमय ब्रह्म कहा गया है, वह प्रेम ही है। इस प्रेम की रस्सी से ही भगवान् के चरण बंधे हुए होते हैं। इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं, क्योंकि 'आनंद' ब्रह्म का सार है, वह आह्लादिनी शक्ति साक्षात् श्रीलाड़िलीजी का स्वरूप है, वही है प्रेम, इस प्रेम के बंधन में बँधने में ही भगवान् प्रसन्न होते हैं। समस्त गोपिकाएँ श्रीराधारानी की अंगकान्ति का प्रकाश हैं। इनके बहुत से रूप शास्त्रों में कहे गए हैं

"यत्पादपद्मनखचन्द्रमणिच्छटायाः, विस्फूर्जितं किमपि गोपवधूष्वदर्शि।
पूर्णानुरागरससागरसारमूर्तिः, सा राधिका मयि कदापि कृपां करोतु॥

(श्रीराधासुधानिधि – १०)

श्रीराधारानी के चरणकमलों में दस चन्द्रमा अर्थात् दस नखचन्द्र हैं। उन नखचंद्रों की चन्द्रिकाएं ही प्रगट गोपीरूप हैं जो प्रेमपीयूष की आनंदरूपासिन्धु हैं। वे प्रेमावेश में श्रीकृष्ण को कटुवचनों से संबोधित करती हैं, जिनका श्रवण श्रीकृष्ण को आनन्दातिरेक में निमग्न कर देता है। वे कहती हैं –

"न केवलं धूर्तत्त्वं परमाकृतज्ञत्त्वमपि पर्य्यवस्येत्।"

(श्रीसनातन गोस्वामी जी कृत वृहत्तोषिणी टीका भागवत १०/३१/१६)

तुम केवल कपटी ही नहीं हो, धूर्त भी हो, अकृतज्ञ भी हो। वे ऐसा इसलिए कह रही हैं क्योंकि संसार में धोखा देना सबसे बड़ा पाप है। मित्रद्रोह, विश्वासघात सबसे बड़ा पाप है, इस प्रसंग में एक कथा आती है – जब बलरामजी तीर्थयात्रा करने गए तो वे एक ऐसे तीर्थ में पहुँचे जहाँ इन्द्र को हत्या लगी थी। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूछा कि इंद्र को हत्या कैसे लगी थी? उनको बताया गया कि धोखा देने से। बलराम जी ने पूछा कि उन्होंने किसे धोखा दिया? तो उत्तर मिला कि नमूची नामक एक राक्षस था, वह बड़ा बलवान था। इंद्र ने उसे धोखे से मारा। पहले इंद्र ने उसको मित्र बना लिया था और कहा था कि हम तुझको सूखे से नहीं मारेंगे, गीले से नहीं मारेंगे, ऐसे बहुत से वचन दिये। एक दिन अवसर पाकर समुद्र के फेन में वज्र छिपा कर उसे मार दिया। बहुत से लोग हत्या कर देते हैं तो वह मृतक जीव उनके शरीर में प्रवेश करके बदला लेता है, यदि वह इस जन्म में बदला नहीं लेता है तो अगले जन्म में बदला लेगा। अतः जब इंद्र ने नमूची का सिर काटा तो वह कटा हुआ सिर इंद्र के पीछे उड़ा और बोला– कहाँ जाता है इंद्र, तूने मेरे साथ विश्वासघात किया, मैं तुझे नहीं छोड़ूंगा। अब इन्द्र भागे और उसके पीछे–पीछे नमूची का कटा हुआ सिर दौड़ा। इंद्र सारी दुनिया में हो आये लेकिन किसी ने सहायता नहीं की क्योंकि पाप आदमी को कमजोर कर देता है। अंत में इंद्र ब्रह्मा जी के पास गए। तब ब्रह्मा जी ने इंद्र से कहा कि अब तो तुमको इस पाप का फल भोगना ही पड़ेगा क्योंकि तुमने धोखा दिया है। किसी से प्रेम करके बाद में उसे धोखा देना बहुत बड़ा पाप है। जब तक नमूची का कल्याण नहीं होगा तब तक तुम भटकते ही रहोगे। तुमने उसको कष्ट दिया है, धोखा दिया है, छल किया है। देखो, ये हालत होती है धोखेबाजों की, इसीलिये सज्जन पुरुष किसी को धोखा नहीं देते हैं। जो वचन कह दिया उसको पूरा निभाते हैं, चाहे मृत्यु हो जाए लेकिन वचन को निभाएँगे, धोखा नहीं देंगे। **"रघुकुल रीति सदा चली आई।प्राण जाएँ पर वचन न जाई।"** इसलिए ब्रह्मा जी इंद्र से बोले कि अमुक तीर्थ में जाकर स्नान करो और नमूची के कटे सिर से भी उस तीर्थ में स्नान करने को कहना। जब उसका कल्याण होगा तब तुम्हारा भी कल्याण होगा। इसलिए इन्द्र उस तीर्थ में गए और वहां स्नान किया, नमूची के कटे सिर ने भी स्नान किया, तब इंद्र की रक्षा हुयी। यहाँ गोपियाँ जो कृष्ण के लिए धूर्त, अक्रतज्ञ आदि कटु वचन कह रहीं हैं, वह प्रेम के कारण कह रही हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण भी न धूर्त हैं न अकृतज्ञ। उनकी क्रिया प्रेमवर्धन की थी।

–क्रमशः

ब्रज-निष्ठा से भाव-संसिद्धि

श्री बाबा महाराज के प्रवचन 'धाम-महिमा' (२/५/२००६) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी गोपालीजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

जब श्रीभट्टदेवाचार्यजी के पास हरिव्यासदेवजी शिष्य बनने के लिए आये तो उन्होंने कहा कि जाओ, पहले बारह वर्ष गिरिराजजी की परिक्रमा लगाओ। श्रीभट्टजी ने परिक्रमा लगाने का जो क्रम बताया, उसके अनुसार निरंतर भगवन्नाम स्मरण, लीला-चिन्तन परिक्रमा के साथ हो, जहाँ रात हो जाए वहीं विश्राम कर लेना, जो मिल जाए उसी से उदरपूर्ति कर लेना। हरिव्यासजी ने गुरु-आज्ञानुसार ही बारह वर्ष तक गिरिराजजी की परिक्रमा लगाई। उस समय ब्रज में अति सघन वन थे, जिनमें हिंसक पशु सिंह-व्याघ्र आदि भी रहते थे। (एकबार कुम्भनदासजी के पुत्र चतुर्भुजदास के भाई कृष्णदास को सिंह ने खा लिया था।)

हरिव्यासदेव बारह वर्ष परिक्रमा लगाने के पश्चात् गुरुदेव श्रीभट्टजी के पास गए और बोले कि अब मुझे दीक्षा दे दीजिये। गुरूजी ने पूछा कि हमारी गोद में तुमको कुछ दिखाई पड़ रहा है? हरिव्यासजी बोले कि कुछ नहीं दिखाई दे रहा है, तब गुरुदेव ने आदेश दिया कि पुनः गिरिराज-परिक्रमा लगाओ। कुछ लोग कहते हैं कि गुरुदेव ने उनसे दो बार १२ वर्ष तक परिक्रमा लगाने का आदेश किया, फिर तीसरी बार एक वर्ष तक परिक्रमा लगाने को कहा, कुछ लोग कहते हैं कि तेरह साल, कुछ कहते हैं कि पच्चीस साल तक परिक्रमा लगवाई, इस सन्दर्भ में अनेकों मत हैं। जब गिरिराज जी की सम्पूर्ण परिक्रमा लगाकर हरिव्यास जी अंतिम बार गुरुदेव के पास पहुँचे तो उन्होंने फिर वही प्रश्न पूछा कि मेरी गोद में क्या दिखाई पड़ रहा है तो हरिव्यासजी ने उत्तर दिया कि आपकी गोद में श्यामा-श्याम विराजमान हैं। तब श्रीगुरुदेवजी ने कहा कि अब तुम्हारी दीक्षा सम्पन्न हो गयी। इस प्रकार हरिव्यासदेवजी को इस अधिभूतधाम (दृश्यमान ब्रज) के सेवन से ही अभीष्ट सिद्धि की प्राप्त हो गई।

लेकिन इस अधिभूत धाम में लोगों की निरंतर भाववृद्धि नहीं हो पाती, यही एक दुःखद तथ्य है। ये केवल ब्रज-वृन्दावन की ही बात नहीं है, नारदजी ने भक्तिसूत्र में कहा है - **"गुण रहितं कामना रहितं प्रतिक्षण वर्धमानं।"** भक्ति यदि **"प्रतिक्षण वर्धमान"** नहीं है तो फिर वह भक्ति कहाँ है? वास्तविकता यह है कि चार दिन बाद वर्धमान के स्थान पर भाव का घटमान हो जाता है। चार दिन माला फेरने के बाद लोगों के मन में प्राकृतिक भाव काम, क्रोध, लोभ, अभाव आदि विकार आने लगते हैं। इस प्रसंग में श्रीभक्तमालजी का एक उदाहरण है - जिस समय श्रीनाभाजी ब्रज में आये, उस समय उन्होंने वृन्दावन में एक सार्वजनिक पंगत का आयोजन किया, जिसमें ब्रजचौरासी कोस के सभी साधु-संतों को आमंत्रित किया गया क्योंकि संत-भक्तों के प्रति अतिशय सेवा-भाव था श्रीनाभाजी में। उसी समय तुलसीदासजी भी वृन्दावन में आये थे। लोगों ने बताया कि तुलसीदासजी भी आये हैं तो नाभा जी ने कहा कि उन्हें भी निमंत्रण दे आओ। लोग निमंत्रण दे आये और नाभा जी से कहा कि वह तो कहीं आते जाते नहीं है तो नाभाजी ने कहा - "वे यहाँ जरूर आयेंगे।" पंगत आरम्भ हुई और दिन भर चली, लोगों ने कहा कि हमने कहा था कि तुलसीदासजी नहीं आयेंगे। जो आलोचक होते हैं, वे आलोचना ही करते हैं। रात के समय जब पंगत समाप्त हो गयी तो बचा हुआ प्रसाद भिखारियों (कंगलों) को बाँटा जा रहा था। उस समय अँधेरे में भिखारी के वेष में गोस्वामी तुलसीदासजी आये और प्रसाद के लिए हाथ फैलाया तो परिवेषण करने वाले साधु ने कहा कि पात्र नहीं लाया, जा पात्र लेकर आ, तो वहाँ एक संत की जूती पड़ी थी, उन्होंने प्रसाद लेने के लिए जूती आगे कर दी। वह परिवेषक क्रोध से आगबबूला हो उठा और चिल्लाया "खड़िया-पलटन कहीं का, महाप्रसाद को जूते में लेता है।" शोरगुल मचने लग गया, नाभाजी भीतर बैठे थे। उन्होंने पूछा - "अरे भाई! हल्ला क्यों करते हो ? एक साधु बोला - "एक ऐसा खड़िया साधु आया कि वह प्रसाद लेने के लिए पात्र ही नहीं लाया और जूती में प्रसाद लेने लगा, अब बिना पात्र के जूती में प्रसाद कैसे दिया जा सकता है।" नाभाजी ने पूछा - "फिर क्या हुआ?" साधु बोला - "वह तो चला गया।" नाभाजी ने कहा - "अरे जल्दी जाओ, उन्हें पकड़ो, वही तो तुलसीदासजी हैं। मैंने कहा था कि वह अवश्य आयेंगें, तुम समझ नहीं पाए, वह जो कहते हैं उसे करते हैं। ये उन्हीं का दोहा है

तुलसी जाके मुखन सो, धोखेहु निकसत राम।
वाके पग की पगतरी, मोरे तन को चाम॥

जिसके मुख से धोखे से भी राम नाम निकल जाए तो हमारे शरीर का चमड़ा काट कर उसके पाँव में पहनने के लिए जूता बना दो। तुम लोग समझ नहीं पाए, वह गोसाँई तुलसीदासजी ही थे।" इसको कहते हैं भक्ति, हमारे जैसे नासमझ लोग तो खड़िया आ गया, जूती में प्रसाद ले रहा है, ऐसा ही कहते रहे और तुलसीदासजी तो प्रसाद लेकर चले भी गए। जो भावुक होता है, उसे चराचर वस्तु भावमय दिखती है क्योंकि उसके हृदय में विशुद्ध भाव का स्फुरण होता है।

-क्रमशः

निष्काम नामाराधना

श्री बाबा महाराज के सत्संग "नाम महिमा" (१८-५-२०१०) से संकलित
संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी लाड़लीजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

श्रीभगवान् कहते हैं

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७/२४)

'ॐ' कहने के बाद ही अर्थात् भगवन्नाम लेने के बाद ही ब्रह्मवादीजन यज्ञ, दान, तप आदि क्रियाएँ करते हैं। भगवन्नाम परमावश्यक है, बिना भगवन्नाम के सब व्यर्थ है। ब्रह्मवादी (तत्त्ववेत्ता) ही भगवन्नाम ॐ, तत्, सत् आदि की महिमा जान सकते हैं। ॐ, राम, कृष्ण आदि सभी नाम एक ही हैं, निर्गुण पद्धति में 'ॐ' कहा जाता है, सगुण पद्धति में राम, कृष्ण आदि कहा जाता है।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपः क्रियाः।
दानक्रियाश्चविविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७/२५)

तत् - वह, निर्देश (भगवन्नाम), इति - कहकर के, अनभिसंधाय फलम् - फल की इच्छा न करके। वेदों में 'तत्' शब्द भगवान् के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे - तत्त्वमसि। मुमुक्षुजन तत् (भगवन्नाम) कहकर और फल को छोड़ करके 'निष्काम भाव से' यज्ञ, दान, तप आदि क्रियाएँ करते हैं। जब तक हमारे मन में किसी भी प्रकार की सांसारिक फलेच्छा है तब तक हम संसार से मुक्त नहीं हो सकते, इसलिए निष्काम भगवन्नाम लेना चाहिए।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ५/१२)

नैष्ठिकी शान्ति (ब्रह्मप्राप्ति) फल को छोड़ने के बाद होगी। अयुक्त लोगों (अपने मन की कामनानुसार चलने वालों) को फल में आसक्ति होने के कारण बंधन अवश्य होता है। दो गाड़ी पर पाँव रखकर नहीं चल सकोगे, चाहे विद्वान् हो, चाहे गृहस्थ अथवा विरक्त हो, जब तक फलासक्ति है तब तक बंधन अवश्य रहेगा, बच नहीं सकते। फल को छोड़ने से तुम अपने आप मुक्त हो जाओगे। इसलिए अपने साथ बेइमानी नहीं करनी चाहिए।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २/५१)

मनीषीजन कर्म के परिणामों (फलों) को छोड़ देते हैं, इससे वे जन्म-मृत्यु के बंधन से छूटकर (मायामुक्त होकर) अविनाशी पद (ब्रह्म पद) को प्राप्त कर लेते हैं। गीता का सार भी यही है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २/४७)

'कदाचन' अर्थात् कभी किसी भी स्थिति में भूल से भी फल की इच्छा मत करो, चाहे सुख-दुःख है, चाहे भूख में प्राण निकल रहे हों, चाहे जन्म-मरण हो, चाहे परिवार नष्ट हो रहा हो, संसार नष्ट हो रहा हो, सर्वनाश हो रहा हो। **'मा कर्मफलहेतुर्भूः'** किसी भी कारण से फल की इच्छा मत करो (कर्मफल का माध्यम मत बनो)। इसका एक प्रत्यक्ष शिक्षाप्रद उदाहरण है - कुछ वर्ष पहले (सन् २०१० मार्च-अप्रैल में) श्रीवृन्दावन में (कुम्भ की बैठक में) श्रीबाबामहाराज से कुछ हितैषी लोगों ने कहा था कि आप आठ-दस लाख रुपये खर्च कीजिये और अपने यहाँ से एक-दो लोगों को महन्त बना दीजिये तो आपकी आवाज साधु-समाज में सुनी जाएगी, तीन-चार महंत बना देंगे तो आपका प्रभाव साधु-समाज में बहुत ज्यादा बढ़ जाएगा। चार-पाँच महन्त बना दीजिये तो इसमें केवल चालीस लाख रुपये खर्च होंगे, ज्यादा नहीं। श्रीबाबामहाराज ने कहा कि पैसे की बात नहीं है,वस्तुतः हम इन सब चीजों को फल समझते हैं। 'महन्त-श्रीमहंत बन गए, मण्डलेश्वर-महामण्डलेश्वर बन गए' ये सब उपाधियाँ फल हैं, इसमें केवल मान-सम्मान की भूख छिपी है, मान-सम्मान आदि कर्मज फल हैं। मान-अपमान दोनों फल हैं। सम्मान को पाकर हम प्रसन्न होते हैं तथा अपमान होने पर दुःखी होते हैं, ये फलासक्ति है।

-क्रमशः

अखण्ड आत्माराम की आराध्या 'अनुरागिनीश्री'

श्रीबाबा महाराज के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि' (१/५/१९९८) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी मुकुन्दप्रियाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

श्रीराधारानी के वसनाञ्चल की पवन को पाकर श्यामसुन्दर परम कृतार्थ हुए।

यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ धन्यातिधन्यपवनेन कृतार्थमानी।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि॥

(श्रीराधासुधानिधि - १)

इस प्रथम श्लोक में श्रीजी के लिए 'वृषभानु भू' शब्द का प्रयोग किया गया है अर्थात् श्रीजी का एक नाम है - 'वृषभानुजा' जो वृषभानुजी की पुत्री हैं। वृषभानुनन्दिनी का वसनाञ्चल कब उड़ा था? इस लीला-प्रसंग में रसिकों द्वारा कथित खोरसांकरी और गह्वरवन की लीलाओं का वर्णन हो चुका है। रसिक-महापुरुषों ने बताया है कि राधारानी की अंचललीला ब्रज के कई स्थलों में हुई है। रसकुल्याकार लिखते हैं कि श्रीजी के अंचल की लीलायें सात स्थानों में हुई हैं। इन सात लीलास्थलियों के अतिरिक्त भी अंचललीलास्थल हैं क्योंकि लीला को बाँधा नहीं जा सकता है।

श्रीशुकदेवजी ने अतिशय भावावेश में कहा कि जो आत्माराम है, वह आत्माराम होकर भी रमण करता है, ये बड़ी विलक्षण बात है। महारास से अंतर्धान होने के बाद श्रीकृष्ण एकमात्र राधिकारानी के साथ जाते हैं। जैसे - राधासुधानिधिकार कहते हैं कि मधुसूदन श्यामसुन्दर योगेश्वरों के लिए दुर्गम गति वाले होते हुये भी श्रीजी की अंचल-वायु को पाकर धन्यातिधन्य हो जाते हैं। उसी तरह से भागवतजी में श्रीशुकदेवजी ने कहा है -

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम्॥

(भागवत १०/३०/३५)

तया- एक वचन दिया है, अर्थात् सभी गोपी नहीं हो सकती हैं, वह एक ही गोपी थी। रेमेतया - उनके साथ रमण किया, आत्मरत - जो आत्माराम हैं।

जो परब्रह्म आत्मरत, आत्माराम, अद्वयतत्त्व था, वह श्रीराधारानी के साथ रमण करता है और किस तरह से रमण करता है ? साधारण रूप से नहीं, चरणों को पकड़ करके, गिड़गिड़ाते हुए अत्यधिक दीनता को दिखाते हुए रमण करता है।

कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम्॥

(भागवत १०/३०/३५)

इधर श्यामसुन्दर दीनता दिखा रहे हैं और उधर राधारानी की वामागति (मान की स्थिति) है। वह जितना टेढ़ा मान करती जा रही हैं, श्यामसुंदर उतने दीन बनते जा रहे हैं। आश्चर्य होता है कि ऐसा रमण ... !! फिर भी वह आत्माराम है, यह बात समझ में नहीं आती है। सनातन अद्वयतत्त्व, आत्मरत-आत्माराम होते हुए भी वह श्रीराधिकारानी के आगे इतनी दीनता दिखाता है, क्यों ? फिर दूसरी ओर बहुत कष्ट से साधन करके लोग ब्रह्मज्ञानी बनते हैं। ब्रह्मज्ञानी के बाद फिर उसमें ब्रह्मलीन होते हैं, ब्रह्मानंद में डूब जाते हैं। जब ब्रह्म वही है, ब्रह्म में कोई भेद नहीं है तो क्या कारण है कि ब्रह्मानंद को छोड़ करके वह ब्रह्मज्ञानी 'श्रीभगवान्' के उस सगुण-साकार रूप में मोहित होकर फँस जाता है, तो इनका वास्तविक उत्तर (सम्यक समाधान) यही है -

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड - २१६)

श्रीजनकजी ब्रह्मानंद में डूबे थे लेकिन उनके मन ने इस ब्रह्मानन्द का त्याग कर दिया भगवान् के मधुर-मनोहर सगुण-साकार स्वरूप को देखकर। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि यही तो सगुण-साकार भगवान् की लीला-रस-माधुर्य के गुणों की विशेषता है -

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(भागवत १/७/१०)

बड़े-बड़े आत्माराम, आप्तकाम, ब्रह्मलीन मुनि, जिनके हृदयस्थ अविद्या की गाँठ समूलतः नष्ट हो गयी है, वे भी भगवान् की सगुण-साकार रूपमाधुरी से आकर्षित होकर अहैतुकी भक्ति करते हैं।

श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसकी ऐसी विशेषता है कि उसको देखकर के ब्रह्मानंद छूट जाता है, क्यों ? इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता है, **"इत्थं भूतगुणो हरिः"** कह दिया अर्थात् श्रीहरि के गुण अकथनीय हैं। और फिर अनंत गुणसंपन्न ब्रह्म श्रीकृष्ण आत्माराम, आत्मरत होते हुए भी श्रीजी की आराधना करके रस-सिद्धि करते हैं, क्योंकि **"इत्थं भूतगुणा राधिका"**श्री राधिका में ऐसे असाम्यातिशय विलक्षण गुण हैं -

निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः।

(श्रीमद्भागवत २/४/१४)

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।

(स्कन्दपुराण, भागवतमाहात्म्य २/११)

श्री राधिकारानी में ऐसे ही दिव्यातिदिव्य गुण हैं कि आत्माराम होते हुए भी श्रीकृष्ण को उनका आश्रय लेकर रमण करना पड़ा, जो रास-विहार लीला गुणातीत, अलौकिक है।

-क्रमशः

DHAM NISHTHA

A lecture by Shri Ramesh Baba Ji Maharaj dt. 5/2/04

Translation By : Shri Ravi Monga, New Delhi

Kavnehu janam Awadh bas joaee,
Ram paraayan so pari hoi

(Ramcharitmanas uttarkand-97)

I shall narrate to you some stories about Dham's potencies wherein even after many Kalpas people realized God. It is a sure fact that all Dham dwellers shall realize God one day, however, time durations may differ. Some day every Dham dweller shall have astha (faith) in pure satsung and hence shall be able to realize God. There is however, a catch. One needs to maintain faith. There are several people around who mislead, distract and eventually bring down astha (faith). It is not only Grihasthas but even sadhus who often trip people and make them fall spiritually. I do not say this because I detest someone. Many a people who visit me, often talk about Dham Nistha (devotion) in a rather undesirable way. They do so as they need to justify their travels outside Braj. I say, if you need to travel outside Braj, do so, but do not speak about Dham Nistha in poor light. Say, if one has faith in Naam and someone else confuses and weakens his Nistha, it would be a Naam apraadh. Similar, is the case with Dham and its people like me who then incur Dham apraadh. I speak from experience as I have I have many people visiting me and I have observed that many of them talk about dham on Naam in an undesirable way which I realize shall fetch them Dham Apraadh or Naam Apraadh. They are scholars and even renounced ascetics. One cannot rebut them as neither they have inquisitiveness or eagerness to learn and nor shall they accept any advices. Such people shall get Dham's mercy at a very later point of time.

Avadh Prabhaav jaan tab praani

(Ramcharitmanas uttarkand-97)

Why does it take so long to get Dham's mercy? What is it that stops Dham from performing its miracle? The answer is:

Jab urr basahi Ramu Dhanu paani

(Ramcharitmanas uttarkand-97)

It shall happen only when you have the lotus feet of the Lord in your heart.

The above few examples have been given from Ramayan on purpose. I do not claim to be a scholar on Ramayan as I hardly understand it at all. I merely spoke from Ramayan to establish the fact that Dham nistha is a universal truth, be it Awadh, Kashi or Braj. We shall talk about Braj now.

The same Dham Nistha has been emphasized for Braj too. It has been said that one cannot understand Vrindavan's true swaroop (real appearance) even if one is staying in Dham. One shall understand the glories of Dham only when one has Radha Rani's lotus feet in his heart. As also mentioned earlier about Awadh: " Jab urr basai Ram Dhanoo paani ", Only when the Bow wielding Lord Ram takes seat in your heart shall you realize the potencies of Dham.

Continued